आ मुस्कराऊँ



श्री बालकृष्ण राव

प्रकाशक
व्यास-मन्दिर
६७ ए, बलराम दे स्ट्रीट,
कलकत्ता–६।



मुद्रक
जोशी 'निर्भीक'
राजस्थान प्रकाशन गृह
१४२, काटन स्ट्रीट, कलकत्ता–७

मूल्य : ३ रु० ५० न० पै०

आवरण-शिल्पी : प्रह्लाद आचार्य
शीर्षक-शिल्पी : श० प्र० श्रीवास्तव
प्रकाशन-तिथि : रामनवमी, संवत्–२०१७

उषा मुस्करा उठी

अपनी ओर से

विराट विश्व काव्यमय है। काव्य का स्रोत संगीतमय-तालमय है धवल हिम-गिरि के शिखरो से काव्य की निर्झरिणी कल्लोल करती हु अनवरत प्रवहमान है–आह्लाद फूटा पड़ता है। अनन्त नील गगन के अन्तराल में अनन्त काल से काव्य का मधुर गुञ्जन व्याप्त है।

प्रकृति के काव्यमय सम्भाषण से कुछ न कुछ सभी परिचित हैं किरणों के स्पर्श से कमल-दल विहँस पड़ता है यह एक काव्य है औ शशि के हास्य को देखकर सागर में जो आलोड़न जागता है यह भी त एक काव्य ही है।

प्रत्येक व्यक्ति में काव्य की भावना प्रकृति ने दी है। कुछ शब्दों क छन्दों के बन्धन में बाँधना न बाँधना यह अन्य विषय है। पर है प्रत्येक व्यक्ति कवि इसमें सन्देह नहीं।

जीवन में गुनगुनाने-गाने का अथवा रोने-क्रन्दन करने का अनुभव प्रत्येक व्यक्ति को कुछ न कुछ होता ही है। मेरा कवि भी समय-समय पर जागा है और उसने कुछ लिख दिया है। उसमें से चयन की हुई कुछ रचनायें आपके कर-कमलों में है। हो सकता है इसमें आप सव कुछ सुन्दर समझ कर कुछ कहें—सम्भव है इसमें कुछ न समझ कर भी

कुछ कहें। अपनी ओर से मैं सबका आदर करूँगा। हर्षातिरेक से पागल बनने में हानि है और शोक से रोने में भी।

वर्षों पहले कहीं-कहीं मैं आपके सम्मुख आया था, आपकी स्मृति पर कहीं किंचित रेखा उसकी आज भी हो सकती है।

आज नित्य नवीना 'उषा मुस्करा उठी' है नित्यकी ही भाँति और मैं उसकी अरुणिम् आभा में आपको मुस्कराते देख रहा हूँ।

अवलोकन, अभिमत और आमुख लिखकर जिन महानों ने अपनी महती उदारता का परिचय दिया है—यह मेरे लिये चिर स्मरणीय है।

पुस्तक की सौन्दर्य्य-वृद्धि में मेरे अनुज समद्र्दैय—जोशी 'निर्भीक' एवं प्रिय शम्भू प्रसाद श्रीवास्तव ने जो श्रम किया है वह श्लाघनीय है।

श्री प्रह्लादजी आचार्य्य के आवरण चित्र के लिये आशा है आप स्वयं उन्हें धन्यवाद देंगे।

प्रकाशक के दायित्व के लिये प्रकाशक किसी से कम धन्यवाद के पात्र नहीं हैं।

चैत्र शु० तृतीया

बालकृष्ण व्यास

अवलोकन

श्री लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी
एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत) एल० टी०, साहित्यरत्न

आदि युग से आजतक मानवता ने अपने क्रमिक विकास के इतिहास का संकलन वाङ्मय के जिन विविध रूपों में किया है, उनमें काव्य साहित्य का स्थान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इसका प्रधान कारण यह है कि यह माध्यम आत्मा के त्रिविध सत्-चित्-आनन्दमय स्वरूपों की अभिव्यक्ति को सर्वाधिक सफलता के साथ चित्रण करने में सफल होता आ रहा है। किसी भाषा का वाङ्मय जहाँ बहुमुखी चेतना को आधार मान उसे रूप देने में तल्लीन रहता है, काव्य हमारी आत्यंतिक चरम सिद्धियों की प्राप्ति को ही लक्ष्य बनाकर हमें उस अनिर्वचनीय आनन्द की झलक दिखाने का प्रयास करता है जो सृष्टि के सारे विकास का लक्ष्य है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि विश्व-चेतना ने अपने रसात्मक-स्वरूप को काव्य के माध्यम से ही पहचाना है।

'उषा मुस्करा उठी' का कवि अपने समाज, समय और परिस्थितियों की देन है। हर युग ने सृष्टि के विविध पदार्थों,

व्यापारों को अपनी विशेष परिस्थिति एवं काल के अनुरूप ही अपनी रसात्मक भावनाओं का आलंबन स्वीकार किया है। अतः एक ओर कवि जब अपने "स्व" को रूप देने में तल्लीन रहता तो उसका काव्य एक विशेष युग की व्यापारात्मक छाया की भी अपरोक्ष रूप में अभिव्यक्ति करता चलता है। तात्पर्य यह कि अभिव्यक्ति का माध्यम जो भी हो, उसका विषय मौलिक रूप में एक ही रहता है। सृष्टि की प्रथम 'उषा' ने चेतना के रूप में जबसर्व प्रथम आँख खोली और जिन रहस्यों की गहराई में प्रवेश कर उसे समझने की चेष्टा की, वे रहस्य आज भी ज्यों के त्यों हैं और मानव-चेतना उन्हीं में डूबती-उतराती चली आ रही है। उनकी अभिव्यक्ति न तभी हो सकी थी, न आजतक हो पायी है और न भविष्य में हो सकने की सम्भावना ही है। हम केवल उन रहस्यों का आभास मात्र पाते रहे हैं और उनकी संवेदनात्मक अनुभूति करते रहे हैं। इन्हीं अनुभूतियों को वेदकालीन मनीषियों ने वेदों, उपनिषदों में गाया, आदि कवियों ने रामायण, महाभारत में व्यक्त किया, बौद्ध-जैन दर्शनों ने अपनी गाथाओं में दुहराया, कबीर-मीरा ने अपने भजनों में रूप दिया और वर्तमान कवि भी उन्हीं को भिन्न लय, भिन्न स्वरों में गाता जा रहा है। जिस प्रकार आदि मानव आरम्भ से आजतक एक है, चाहे उसके स्वरूप में कितना भी परिवर्तन क्यों न हो गया हो, उसी प्रकार उसके स्वर भी एक ही हैं। मानव अपनी रहस्यात्मक जिज्ञासा को ही विभिन्न रूपों में सँवारता सजाता आ रहा है।

प्रस्तुत काव्य संग्रह की रचनाओं में भी अभिव्यक्ति की उपर्युक्त परम्परा का निर्वाह दृष्टिगोचर होता है। विकास के क्रम में उषा ही सर्व प्रथम अपने आह्लादमय वातावरण में आकर्षक रूप लेकर अवतरित होती है जिसकी सापेक्षता में तमासावृत जगत् अपने

अस्तित्व को पहचानता है। चेतना पर से अचेतन का आवरण निराभृत होता है। अतः कवि का यह संकलन नव जागरण का प्रतीक है जिसकी सापेक्षता में ही कवि ने अपने को पहचाना है। अपनी कविता "उषा मुस्करा उठी" की पंक्तियों में कवि बहुत सीधे-सरल रूप में अपनी इस नयी अनुभूति को अभिव्यक्त कर देता है—

प्राण में नवीन प्राण पुष्प में पराग दान
मधुप में नवीन राग नवल स्वर जगा उठी
उषा मुस्करा उठी।

वैदिक ऋचाओं का गायक भी तो अपनी इसी अनुभूति से प्रभावित होकर कह उठा था—

दर्भ्रं पश्यद्भ्म उर्विया विचक्ष, उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा॥
ऋग्वेद उ० सू० । ५ ।

विश्व के व्यापारों में निहित अनिर्वचनीयता ने ही मानव में रहस्य के प्रति उत्कंठा जागृत की और उसने सृष्टि के कण-कण में उस असीम सत्ता की व्याप्ति का अनुभव किया जिसकी अभिव्यक्ति अपने सीमित साधनों से न कर सकने के कारण उसे अनेक नाम रूपमय उपाधियों की कल्पना करनी पड़ी। किन्तु नाम और रूप से अनाम और अरूप की अभिव्यक्ति भला कैसे संभव होती! पराभूत मानव नेति, नेदम्, सोऽहं आदि उपाधियों से उसकी ओर संकेत मात्र करने में ही सफल हुआ है। वह उस असीम का अनुभव करता है, उसकी सापेक्षता में ही उसे अपने को सीमित लघुकण होने का ज्ञान होता है और अपनी पराजय स्वीकार करता हुआ कह उठता है—

तू असीम मैं सीमित लघुकण
तुझको मैं कैसे पहचानूँ।

कहा जा सकता है कि ऐसी बातें तो बहुत कही जा चुकी हैं और एक ही प्रकार की पुरानी बातों के पिष्टपेषण मात्र से काव्यकार के किस उद्देश्य की सिद्धि होती है? ऐसी बातें तो विश्व के सभी उच्च साहित्यों में किसी न किसी रूप में लिखी गई हैं और रहस्यात्मक भावनाओं के अभिव्यक्तिकरण की एक परम्परा सी बन गई है। बात किसी विशेष मात्रा तक ठीक भी है। परन्तु उस परम्परा ने धर्म का रूप ग्रहण कर लिया है। आखिरकार धर्म भी तो उसी रहस्य की जिज्ञासा का उद्बोधन करते हैं और वे अति प्राचीन होते हुए भी सर्वथा नवीन हैं। धर्म की इस परम्परा से कोई भी अपने को तटस्थ नहीं रख सकता। अतः प्राचीन कवि ने जिसे गा दिया है उसे पुनः गाना प्राचीनता का पिष्टपेषण नहीं वरन् नवीनता की सृष्टि है और इस प्राचीनता को कवि युग-युगान्तों तक गाता जायगा। वास्तव में कवि की मौलिकता विषय में न होकर वस्तु में होती है। प्रत्येक युग का कवि अपने इस विषय को अपने युग की उपयुक्त वस्तुओं से सजाता जायगा और इसी में ही उसकी मौलिकता के दर्शन होंगे।

भारतीय साहित्य में आध्यात्मिक अभिव्यक्ति के लिये उन्हीं सामान्य उपकरणों का आधार लिया गया है जिसके द्वारा कवि अपने लौकिक रागद्वेषात्मक भावों की अभिव्यक्ति किया करता था। पुरुष-नारी का पारस्परिक आकर्षण और एक दूसरे की प्राप्ति के लिये उसके अनेक प्रकार के प्रणय-व्यापार मानव हृदय का अनादिकाल से स्पर्श करते चले आ रहे हैं। आदि काव्यों में प्रकृति को पुरुष की प्रियतमा मानकर उसको अनेक हावों-भावों द्वारा पुरुष को रिझाते हुये दिखाया गया है। जगत् ने प्रणय-सम्बन्ध में ही अपने भावों की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति की है। अतः यही आधार उस रहस्य को भी अभिव्यक्त करने का कारण बनाया गया। अनेक

कविताओं के अन्तर्गत ऐसी पंक्तियाँ हमें प्रस्तुत संकलन में देखने को मिलती हैं।

एक ओर अपने प्रियतम को रिझाने के लिये कवि—

छिप छिप डर अवगुण्ठन खोलूँ,
नत ग्रीवा कर सस्मित बोलूँ,
कमल करों के बन्धन में बँध-
सिहर-सिहर बेसुध सी होलूँ,
देकर अपना तन-मन-जीवन,

में चिरन्तन सुख पाने की कामना करता है, अपना सब कुछ भूलकर अपना चञ्चल चिर यौवन लेकर उसी के उर में मिल जाना चाहता है, तो दूसरी ओर अपनी प्रियतमा को पाने के लिये वह पुकार उठता है—

पंछियों का एक जोड़ा वृक्ष पर बैठा विहँसता
विजन में अज्ञात का अभिसार है, कितनी सरसता
अधर अधरों से मिलाओ, प्राण प्राणों में मिलाओ
भूल बैठी हो कहाँ तुम शीघ्र आओ-शीघ्र आओ।

और एक दूसरे स्थल पर—

दूर रह कर भी प्रिये मैं गीत तेरे गा रहा हूँ।
तू समझती मैं विरह में दिवस-निशि रोकर बिताती,
मेघ पावस के बने हैं नयन—पर आती न पाती,
किन्तु यह भी सत्य सुन्दरि हैं वहीं पर प्राण मेरे,
शून्य तन-मन शून्य जीवन पास तेरे गान मेरे……

संसार के सभी रहस्यवादी कवियों ने उस रहस्य से प्रणय-सम्बन्ध जोड़कर अपने लौकिक प्रणय-व्यापारों के आधार पर आत्मनिवेदन करते हुए उसके समीप पहुंचने की चेष्टा की है। कबीर ने—'*राम मोर पिउ……मैं राम की बहुरिया*', मीरा ने—'दरद की

मारी वन-वन डोलूँ', महादेवी वर्मा ने—'प्रियतम को मेरे भाता, तम के पर्दे में आना, ओ नभ की दीपावलियों क्षण भर को तुम बुझ जाना' आदि पंक्तियों में उसी सान्निध्यता का अनुभव किया है।

तात्पर्य यह है कि "उषा मुस्करा उठी" का कवि रहस्यवादी कवियों की ही परम्परा की एक कड़ी है। उसके अन्तर में कुछ ऐसी ही कुतूहलपूर्ण अनुभूतियाँ जागृत हुई हैं जिनसे हमारे रहस्यवादी प्राचीन कवि प्रभावित थे। इन अनुभूतियों की अभिव्यक्ति भी कवि ने उन्हीं परम्परागत आधारों पर की है। जहाँतक मौलिकता का सम्बन्ध है वह कवि के स्वरूप-चित्रण, हावों-भावों की नवीन योजना, शब्द-चयन के अपने विधान में है। विरह की वेदना से आकुल-उद्विग्न कवि जब-जब अपनी हृत्तन्त्री के तार जोड़ कर व्यथित मन की पीड़ा को स्वर में बाँधने की चेष्टा करता है तो वह तार "झन-झन कर बिगड़-बिगड़ जाता" है। उसके स्वर नीलगगन से टकरा कर भूतल पर छितरा जाते हैं और वह मन ही मन खीझकर प्रश्न कर उठता है—

संसृति के सुख-दुख से थककर, एकाकी मैं निर्जन तट पर
वृक्षों की व्यथित छाँह नीचे, सोये कूलों की छाती पर
कुछ साध लिये जब गाता हूँ……
निस्तब्ध निशा में गीतों का उपहार टूट क्यों जाता है
यह तार टूट क्यों जाता है।

उन्मना की अनुरक्ति का यह कैसा सजीव चित्र है!

प्रेमी-प्रेमिका के प्रणय व्यापारों के आधार के अतिरिक्त प्रकृति के व्यापारों में अज्ञात सत्ता की व्याप्ति के अनुभव द्वारा भी कवियों ने अपनी रहस्यात्मक भावना की अभिव्यक्ति की है। गुह्य की इस व्याप्ति का अनुभव प्रायः दो रूपों में होता आया है। प्रथम रूप में तो कवि प्रकृति के सारे व्यापारों में उसी सत्ता की व्याप्ति देखता

है। नैसर्गिक सुषमा आकर्षण से भरी होकर जिस कारण हृदय-हारिणी बनी हुई है उसमें अलौकिकता की अनुभूति ही एक ऐसा सौन्दर्य है जो मानव-कल्पना को मनमानी उड़ान भरने की शक्ति देता रहा है। प्रकृति के वातावरण में व्याप्त किसी रहस्यात्मक सत्ता की अनुभूति कवि की अनेक पंक्तियों में व्यक्त हुई है। उदाहरणार्थ—

कमल की लोल पंखुड़ियाँ हँसा कर स्वयं छिप बैठा

× × × ×

कहीं से चाँद में हँसकर किरण से राग में स्वर में
सुधा बिखरा रहा है

दूसरी दिशा में प्रकृति में मानवीय गुणों के आरोप द्वारा उसे प्रणय सम्बन्धी हावों-भावों से सुसज्जित करके प्रियतम को रिझाने की चेष्टा की जाती है। ऐसी भी पंक्तियाँ हमें यत्र-तत्र बिखरी दीख पड़ती हैं—

देख झरनों का विहँसना चपल सरिता का उमड़ना,
कूल से अठखेलियाँ कर सिन्धु लहरों का पकड़ना;
वृक्ष से लतिका लिपटती—देख कर तू ही बता यह प्यार क्या है ?

× × × ×

उमड़-उमड़ कर बहती जाती कुछ बलखाती कुछ इठलाती,
कभी उर्वशी सी मदमाती नव गति में नव लास्य दिखाती,
परिरम्भन चुम्बन में पल-पल नव-नव रूप बनाती है,
लहर मंजु मृदु गाती है।

इस प्रकार उसी रहस्य की अभिव्यक्ति करने वाले प्रमुख माध्यम जैसे :—

(१) स्वतः प्रियतमा के रूप में प्रियतम के प्रति आत्म-निवेदन

(२) प्रियतम के रूप में प्रियतमा की प्राप्ति की उत्कंठा—

(३) प्रकृति के कण-कण में व्याप्त चिरन्तन सत्ता का आभास
(४) मानवी गुणारोपित प्रकृति-सुन्दरी द्वारा प्रियतम को रिझाने की चेष्टा का निर्वाह कवि ने प्रस्तुत संकलन में सफलतापूर्वक किया है।

भौतिक संघर्षों की जटिलताओं से घबड़ा कर और अपने अस्तित्व की निर्बलता का आभास पाकर ही कवि कल्पना लोक में विचरण करता है। ऐसी विचार धारा का अभ्युदय भी साहित्य के क्षेत्र में उस समय हुआ जब कि दार्शनिक कवितायें रूढ़ि की कोटि में आने लगीं और जाने-अनजाने में भावुकों का एक वर्ग अनुभूति शून्य कल्पनाओं के एक ढाँचे को दर्शन के क्षेत्र में प्रयुक्त होनेवाले चुने-चुने शब्दों से सजाकर उन्हें दार्शनिक कविताओं की कोटि में रखने लगा। यथार्थ की ओर उन्मुख होने वाले विचारकों ने रहस्य अथवा गुह्य की ओर प्रवृत्ति रखने वाले कवियों को आडम्बरी और पलायनवादी कहना शुरू किया। अतः यह स्वाभाविक ही था कि असीम अन्तरिक्ष में उड़ने वाला कवि भी धरती की ओर अपनी आँखें खोले। यद्यपि रहस्यवादी कवियों को पलायनवादी कहना सर्वांशतः सत्य नहीं था। इन कवियों की साहित्यिक देन, जिसने कविता को साधारण मानवीय स्वार्थ की संकुचित परिधि से बाहर निकाल कर उसके अनेक प्रच्छन्न द्वार उन्मुक्त किये, उसे नवीन रंग और नयी भावनायें प्रदान की, अस्वीकार नहीं की जा सकती। किन्तु अनुकरण वृत्ति वालों के पक्ष में तो यथार्थवादियों के दृष्टिकोण में कुछ सत्यता थी ही। फलतः दार्शनिक उड़ानों की गति धीमी हुई और गगनचारी को भूमिचारी होना पड़ा। इसके साथ ही इसे भी समझ लेना चाहिये कि काव्य-क्षेत्र में युग-चेतना से सम्बन्ध रखने वाली कविता दार्शनिक कवि की प्रौढ़ता को द्योतित करती है, किसी नये अध्याय अथवा नवीन दृष्टिकोण का सृजन नहीं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी विकास की परंपरा कल्पना के पश्चात् विचारों की प्रौढ़ता का रूप धारण करती है। बालक कल्पना प्रधान ही होता है जो प्रौढ़ और वृद्ध होकर विचारक और विवेचक बन जाता है। प्रायः सभी भाषाओं के दार्शनिक कवि अपनी प्रौढ़ावस्था में समाज की ओर झुकते पाये जाते हैं। हिन्दी साहित्य में 'पन्त' और 'निराला' की रचनाओं में भी विकास का यही क्रम पाया जाता है।

लोक-दर्शन करने में वही समर्थ हो सकता है जिसने विश्व के रहस्यों का दर्शन किया हो, इसके संघर्षों के कारण को समझ लिया हो और अज्ञानता के अन्धकार में पीड़ित हुई मानवता को छुटकारा देने के लिये आकुल भावना रखता हो। जो जगती के आविर्भाव, विकास और चरमसमाप्ति को जानने में सफल नहीं हुआ तो भूले-भटकों को पहचान कर उन्हें प्रशस्त मार्ग पर लाकर खड़ा करना उसके लिये असम्भव है। ज्ञान का आलोक ही तिमिर के पर्दे को भेद सकता है—

गहन तिमिर से भरे विश्व में पावन प्रणय प्रकाश चाहिये
श्रान्त-पथिक को ज्वलित-पन्थ पर सम्बल, दृढ़ विश्वास चाहिये

एक अन्य स्थल पर कवि की वाणी अत्याचारों का विरोध करने के लिये क्रांति का आह्वान करती है :—

भैरवी, भीषण प्रलय के गीत गाती क्यों नहीं है
सुप्त वीणा तार पर भैरव जगाती क्यों नही है

और कहीं पर युग-चेतना के स्वरों में अपना स्वर मिलाती हुई वह पूंजीवाद का सशस्त्र विद्रोह करने के लिये उठ खड़ी होती है—

ताण्डव से झंझा से बढ़ कर आज मुझे करना है नर्तन

तथा :—

धन सत्ता मद से जो अन्धे उनका नाम मिटाऊँगी मैं
भग्न कुटीरों को महलों में परिणत कर सुख पाऊँगी मैं।

इर प्रकार सम्पूर्ण जगती को नव जागरण का संदेश देता हुआ वह कह उठता है—

शिशुओं में भी उन्माद जगे जागे जगती का ओर-छोर
पद दलित जगें, जागें किसान जागे जग-जन का स्वाभिमान
कवि भीम भयङ्कर छेड़ गान डोले भू-भूधर विश्व प्राण।

प्रस्तुत संकलन का सिंहावलोकन कर लेने के पश्चात् उसके सम्बन्ध में दो शब्द और कह देना अयुक्तिसंगत न होगा कि कवि की इन रचनाओं का संकलित रूप में प्रकाशन प्रगति और प्रयोग के इस युग में यदि न होकर कहीं उनके जन्मकाल में सम्भव हो पाता तो हिन्दी-साहित्य की आधुनिक काव्य-धारा में इनका एक विशेष स्थान होता। इन रचनाओं में विगत २० वर्षों का विकासक्रम छिपा हुआ है। अतः पाठक इनकी ऐतिहासिकता को दृष्टि में रख कर इनका रसास्वादन करने का प्रयास करे तो उसे वर्तमान उत्तेजनात्मक कविताओं की तिक्तता से भिन्न एक अनूठे रस की उपलब्धि होगी।

"उषा मुस्करा उठी" के आशावादी कवि की भावी काव्य कृतियाँ जन-मानस की स्वस्थ मनोवृत्तियों को जाग्रत करने में और भी अधिक समर्थ होंगी ऐसा मेरा विश्वास है।

पानागढ़ — लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी
महाशिवरात्रि
२५-२-६०

अभिमत

डा० सत्यनारायण शर्मा
पी० एच० डी०, डी० लिट्
भूतपूर्व अध्यापक गटिंगन विश्वविद्यालय, जर्मनी,
वर्तमान प्रिंसिपल, मानव-भारती, मसूरी।

वर्तमान युग में विज्ञान ने काव्य-साधना और दर्शन-साधना से ी अधिक महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया है। यह कोई वैसी न्ता की बात नहीं है, क्योंकि सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर यह ट हो जाता है कि इन तीनों प्रकार की साधनाओं का पर्यवसान ही गंतव्य-स्थल में होता है और तीनों मिल-जुलकर अन्त में ही विश्व-देवता के किरणोज्वल स्वरूप का उद्घाटन करती हैं। ा की बात जो है, वह यह कि अर्थनीति और राजनीति इन तीनों र की साधनाओं को हतवीर्य करके उनपर अपना प्रभुत्व स्थापित को सचेष्ट है। सौभाग्यशाली हैं वे लोग, जो इस युग में साहित्य, दर्शन अथवा विज्ञान-साधना को इस प्रकार के और विषवर्षी प्रभावों और प्रभुत्वों से मुक्त रखने में समर्थ हैं।

ाधना की सामाजिक प्रतिष्ठा का आंशिक विलोप इस होना सर्वथा स्वाभाविक ही था। इससे अंततः हानि मानव-

समाज के ही आभ्यन्तर विकास की हुई है, उसी के मन-प्राण की पिपासा को अवहेलित और अपूरित रहना पड़ा है, सच्चे काव्य-साधकों की उससे अणुमात्र भी हानि नहीं हुई है।

सच्चा काव्य-साधक अंतरिक्ष के सहस्राधिक नक्षत्रों की छाया में किसी सरसी के तट पर बैठकर निशीथ के अन्धकार में या चन्द्र-किरणोज्वल यामिनी में अपनी कल्पना-परी को नृत्य-निरत करके जिस सुमनोहर भावलोक की सृष्टि करने में समर्थ हो पाता है, उसका दर्शन मानव-समाज नहीं कर पाता या करने की लालसा से ही पराङ्मुख हो जाता है तो यह किसी भी विज्ञ पुरुष की दृष्टि में कवि का दुर्भाग्य नहीं माना जायगा। सच्चे कवि की साधना का प्रमुख उद्देश्य होता है अपने पार्थिव अस्तित्व के अशोभन अंधकार में पुनीत स्वर्गिक चन्द्र-किरणों के आगमन द्वारा अपार्थिव सौंदर्य की सृष्टि करना। यह उसकी अनुकम्पा है, जो वह मानव-समाज को भी इस अपार्थिव सौंदर्य-राशि का आस्वादन करने का अवसर प्रदान करता है। यदि वह ऐसा नहीं करता तो वह दोष का भागी भले ही माना जाय, स्वार्थपरता का दोषारोपण उस पर भले ही हो, वह दुर्भाग्यग्रस्त कभी नहीं माना जायगा।

सारांश यह है कि प्रख्याति या जन-स्तव कवि की साधना की गरिमा से विशिष्ट सम्बन्ध रखे ही, यह आवश्यक नहीं। सच्चा कवि साधना का परिपाक होने पर एकान्त में गीतों की सृष्टि करता रहेगा और काव्य-सौंदर्य का प्रवाह अविच्छिन्न रूप में उसके मानस-लोक में चलता रहेगा।

भारतवर्ष लौटने पर जिन साहित्य-साधकों से नया परिचय हुआ, और जिनसे और जिनकी काव्य-साधना से परिचित होकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई, उनमें श्री बालकृष्ण व्यास एक हैं। यश की लालसा से दूर, काव्य-सर्जना करने वाले इस कवि के जीवन के

वे क्षण भी काव्य-साधना के पीयूष कणों से प्रभावित हैं जिनमें उन्हें जीविकोपार्जनार्थ औद्योगिक क्षेत्र में संघर्ष-निरत होना पड़ता है।

"उषा मुस्करा उठी" उनकी विगत कुछ वर्षों में लिखी गई कविताओं का संग्रह है। जो भी साहित्य-रसिक इन कविताओं का रसास्वादन करेगा, वह निश्चय ही पायेगा कि उसने अपने समय का सदुपयोग किया है और उसको रसोपलब्धि हुई है।

उत्कृष्ट काव्य-सर्जना के लिये तीन बातें सर्वाधिक आवश्यक है—भाषा का सौष्ठव और प्रवाह, कल्पना का सशक्त अन्तरिक्ष-विचरण और—अनुभूति की प्रखरता। इन तीनों को यदि सशक्त अध्ययन का बल मिल जाय तो फिर काव्य का स्वरूप और भी निखर जाता है।

व्यासजी की भाषा में सौष्ठव भी है, प्रवाह भी। कोमल-कांत शब्दावली "उषा मुस्करा उठी" में प्रचुर मात्रा में मिलती है। भाव-वहन के लिये उपयुक्त शब्दों का चुनाव करने में भी व्यासजी कुशल हैं।

साधक होने के कारण पृथ्वी पर पैर होने पर भी आँखें उनकी आकाश की ओर हैं अतः उनका कल्पना-विहग व्योम-विचरण बड़े चाव से करता है, केवल चाव से ही नहीं, शक्ति से भी। अनुभूति की प्रखरता का भी अभाव उनकी कविताओं में नहीं मिलेगा।

जैसा कि मैंने आरम्भ में ही कह दिया है—व्यासजी की प्रवृत्ति प्रचारमुखी कभी नहीं रही, और इसी कारण दो दशाब्दियों की काव्य-साधना के बाद भी वे साहित्यिक क्षेत्र में अज्ञात ही हैं। महाकवि शेली ने Defence of Poetry में यह जो निम्नलिखित वाक्य लिखा है, वह व्यासजी के जीवन में दृष्टिगत होता है—

> "A poet is a nightingale who sits in darkness & sings to cheer its own solitude with sweet sounds." (Shelly)

यश ऐसे व्यक्तियों को मिले न मिले, उससे उनका कुछ बनता बिगड़ता नहीं। विशेष कर कवि की तो यश के अभाव से कोई भी हानि नहीं होती! यदि यश है तो अच्छा है, उससे जीवन की वाह्य सुविधायें मिल जाती हैं, लेकिन नहीं है तो और भी अच्छा है। बिना किसी व्यवधान के साधना का क्रम चलता रहता है।

प्रकृति के राज्य में मात्र मनुष्य का ही अधिवास नहीं है। सहस्राधिक अन्य प्राणी भी हैं। और फिर सच्चे कवि की दृष्टि में तो उषा और सन्ध्या, नक्षत्र और पुष्प, लता और लहर तक में सजीवता रहती है। फिर उसके लिये मानवी सम्बन्ध की आवश्यकता उतनी उत्कट कहाँ रह पाती है!

यहाँ स्काट के एक पद्य का उद्धरण करने के लोभ का संवरण नहीं कर पा रहा—

Call it not vain-they do not err,
Who say that when the poet dies,
Mute nature mourns her worshipper.
And Celebrates the obsequies. (Scott.)

व्यासजी कवि ही नहीं हैं, उनमें दार्शनिक अन्तर्दृष्टि भी है, दार्शनिक जिज्ञासा वृत्ति भी है अतः इस पुस्तक में कई कविताएँ ऐसी भी हैं जो हृदय के साथ ही पाठक के मस्तिष्क को भी आहार प्रदान करती हैं।

मैं आशा करता हूं, व्यासजी की काव्य-साधना निरन्तर सजग रहेगी और उससे उनके जीवन-यात्रा-पथ पर तो आलोक और सौरभ प्रसारित होगा ही, साथ ही हिन्दी के पाठक भी उससे लाभान्वित होने से वंचित न रहेंगे।

मैं व्यासजी की इस काव्य-कृति को एक सुन्दर और रसवर्षिणी कृति के रूप में पाता हूं।

सत्यनारायण शर्मा

कलकत्ता १४-२-६०

आमुख

श्री आरसी प्रसाद सिंह

जब छायावादी रचना का अन्त हो रहा था और उसके स्थान को अधिकृत करने के लिये नये नये वादों के प्रयोग चलने लगे थे—उस समय व्यासजी की रचनाएँ कलकत्ते के पत्रों में प्रकाशित हुआ करती थीं। वर्षों के मौन के बाद आपके हृदय में पुनः उमंगों की ज्वार उठी और फलस्वरूप जीवन की "उषा मुस्करा उठी"।

संग्रह की कविताएँ मुख्यतः छायावादी रीति-कालीन युग के स्पष्ट प्रभाव को ही परिलक्षित करती हैं। कहना नहीं होगा कि छायावादी वीणा का तार जब टूटने लगा, तब उसके स्वर सौ—सौ गीतों के रूप में बिखर गये और एक—एक गीत में सौ-सौ तारों का स्पन्दन बोलने लगा। जिन भावुक प्राणों ने उन स्पन्दनों को निष्कपट भाव से ग्रहण कर लिया, उन्हीं में श्री बालकृष्ण व्यास की गणना की जा सकती है।

उनकी रचनाएँ प्रायः गीतों के माध्यम से मुखरित हुई हैं, अतएव इनमें गीत-काव्य के अनुकूल भावधारा ही विशेष रूप से प्रवाहित हो रही है और यही उनकी सफलता का कारण है। गीतों का भाव-जगत ही और है, जहाँ बड़ी सावधानी से एक एक फूल चुन कर देवता को अर्पित करना पड़ता है। उसका सीधा सम्बन्ध हमारी प्राणगत अनुभूतियों से होता है, अपने अन्तर के सुख से ही आत्मा संतुष्ट रहती है और बाह्य जगत भी उसके असीम अन्तर लोक में एकाकार हो जाता है।

व्यासजी की कविताओं को हम साधारणतः तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं। पहली श्रेणी में वे रचनाएँ आती हैं,

जिनमें आत्मा परमात्मा का सम्बन्ध व्यक्त किया गया है और जिन्हें हम साहित्य में रहस्यवाद के नाम से अभिहित करते हैं। दूसरी कोटि की वे रचनाएँ हैं, जिनमें प्राकृतिक सौंदर्य्य का वर्णन है अथवा अलौकिक प्रेम, विरह, मान, राग आदि का भाव अभिव्यक्त होता है। तीसरी कोटि में हम उन रचनाओं को भी पाते हैं जिनमें सांसारिक सुख दुःख के क्षणभंगुर अनुभवों ने पश्चाताप, विराग, आक्रोश एवं उद्वेग का भाव ग्रहण किया है और जिससे संसार या परिस्थितियों को बदल देने वाली प्रतिक्रिया भी विद्यमान है! भावना परक एवं अनुभूति प्रधान गीतों से प्रस्तुत काव्य ग्रन्थ का अधिकांश भरा पूरा है। ऐसा लगता है कि कवि अपने हृदय जगत् की अनुभूतियों में खो गया है और वहीं उसका स्वर अत्यन्त उदात्त, करुण तथा निश्छल निर्द्वन्द हो उठा है, जहाँ उसने भावों की गहराई में डुबकी लगायी है। कवि की आस्था भी अपने गीतों में बोलती है—

एक मधुमय गीत तेरा एक लघुतम गीत मेरा

× × ×

प्रणय के प्रिय गीत पावन गा रहा हूँ

× × ×

अन्तर के अन्तःपुर में नित बीन बजाकर गाता हूँ मैं।

रसज्ञ पाठक अनायास इसके रस में डूबने उतराने लगेंगे और भावों के प्रवाह में बह जायेंगे। मेरा कार्य इतना ही है कि वाणी के मन्दिर में, मंगलमयी के द्वार पर कवि का अभिनन्दन कर दूँ। व्यासजी की कविताओं में अनुभूति की प्रखरता, एक स्वस्थ, सबल और सुन्दर दृष्टिकोण सर्वत्र प्राप्त होता है, जो हृदय को आनन्द से विभोर कर देता है। आशा है कि व्यासजी निरन्तर नये नये पुष्पों से भारती का शृङ्गार करते रहेंगे।

आरसी प्रसाद सिंह

कलकत्ता १८-२-६०



आमुस्कार उता

आह्वान

मानस-मन्दिर में आओ !
हंस-विवेक वाहिनी विमले,
मधुर - मधुर मुसकाओ !
मृदु मञ्जुल बीन बजाओ !
नये स्वरों में भर सम्मोहन,
मुग्ध करो तुम जग-जन- जीवन,
वीणा वादिनि ! अन्तर मन में-
भर दो भ्रातृ-प्रेम पावन धन,
नये ठाठ में, नयी रागिनी,
गीत नये नित गाओ !
सुख के स्वर-दीप जलाओ !
मानस - मन्दिर में आओ !





★

प्राण में यह कौन आया !
गगन से मृदु गीत किसने है सुनाया,
हैं प्रफुल्लित सब दिशाएँ,
तृप्त हैं सब कामनाएँ,
महा तम के सिन्धु पर आलोक है किसने बिछाया !
प्राण में यह कौन आया !
टूटते हैं बन्ध सारे,
गूँजते हैं तार प्यारे,
मिलन - मुरली के स्वरों ने सुप्त प्राणों को जगाया !
प्राण में यह कौन आया !
गूँथ सुरभित मन्जु माला,
लिये कर में प्रणय-प्याला,
विहँसता सा अमरता का कौन प्रिय सन्देश लाया !
प्राण में यह कौन आया !

उषा मुस्करा उठी

उषा मुस्करा उठी ।
तिमिर जाल भेदकर
रश्मियाँ बिखरा उठी ।
उषा मुस्करा उठी ।
प्राण में नवीन प्राण
पुष्प में पराग दान
मधुप में नवीन राग
नवल स्वर जगा उठी ।
उषा मुस्करा उठी ।

उषा मुस्करा उठी

प्यार ओस से पली
वृन्त पर खिली कली
निर्झरी विहँस-मचल
लास्य नव दिखा उठी।
उषा मुस्करा उठी।

देखकर अनेक रंग
गगन पर उड़े विहंग
गूँज रहा साम गान
अर्घ्य ले धरा उठी।
उषा मुस्करा उठी।



अभिप्सा



गायक बनकर गीत सुनाऊँ!
मधुर-मधुर स्वर सरित बहाकर,
झलमल ज्योति-सिन्धु लहराकर,
तिमिराच्छादित निबिड़ निशा में-
स्वर का शुचि आलोक बिछाकर,
स्वर की मदिरा दिग दिगन्त-भर
प्रिय, तेरे स्वर में मिल जाऊँ!



वधू नवेली बन कर आऊं!
छिप, छिप डर-अवगुण्ठन खोलूँ,
नत ग्रीवाकर सस्मित बोलूँ,
कमल - करों के बन्धन में बँध
सिहर - सिहर बेसुध सी हो लूँ,
देकर अपना तन - मन - जीवन
प्रणय - पयोधि-केलि सुख पाऊँ!
तू बनकर तुझ में मुस्काऊँ!



उषा मुस्करा उठी

सरिता बन लहराती आऊँ।
तोड़ूँ पथ - बाधाएँ बन्धन,
छोड़ूँ निर्झर - सुरभित कानन,
क्रीड़ा करती, हँसती, गाती
आऊँ ले चञ्चल चिर यौवन,
सुख–दुख की स्मृतियाँ बिसार कर,
प्रिय, तेरे उर में मिल जाऊँ।



तेरा गायक गान



मधुर मृदु तेरा गायक गान !
मधुर स्वर - लहरी मोहक तान !
स्वरों में है प्रकाश प्यारा,
फैलकर करता उजियारा,
गगन गुञ्जित - स्वर परसन से
बही पाषाणो से धारा,
व्याकुला सरिता चञ्चल बन,
स्वरो से लेकर पागलपन,
तरंगित करती कल-कल नाद,
ढूँढती अपना जीवन - धन,
स्वरों की सुनकर शक्ति महान,
कहूँ क्या मैं स्वर से अनजान

उषा मुस्करा उठी

उठा, स्वर का कोमल कम्पन,
चाह है गायक बन जाऊँ,
प्राण, पर डर करता क्रन्दन,
न जब तक स्वर तेरा पाऊँ,
बिछाकर स्वर का मनहर जाल,
दिया बन्धन में मुझको डाल,
मुक्त कर दे, गायक द्युतिमान,
कण्ठ में भरकर गीत रसाल,
बनूँ फिर गायक चतुर, सुजान,
स्वरों से कर स्वर का आह्वान!

●

अनिर्वचनीय



तू असीम में सीमित लघु कण,
तुझको मैं कैसे पहचानूँ!
विद्युत बनकर वज्र घोर से,
दिग् दिगन्त को तू थहराता,
कभी शान्ति की शीतल रिमझिम–
वर्षा बनकर गीत सुनाता,
वीणा के मादक स्वर से तू
कभी बहाता जीवन प्यारा,
पवन यहीं से कुछ कण लेकर
जग के आँगन में बिखराता,
निहित भेद तुझ में ही तेरा,
तुझको मानूँ तो क्या मानूँ!

उषा मुस्करा उठी

कुछ कहते, तू प्रति मानव के
मानस में हँसता रहता है,
विरह - मिलन की क्रीड़ा करता
जग के सब सुख दुख सहता है,
नील गगन का चाँद तुझे ही,
कहते हैं कुछ प्रेमी मानव
महातिमिर महानाश में
प्राण-ज्योति बन तू बहता है,
सृजन - स्थिति - संहार रूप तू
मैं क्या समझूँ, मैं क्या जानूँ?
निराकार, साकार भेद की
बातें सुन सुन कर मैं हारा,
अगणित नाम रंग बहुरूपी
नेति, नेति, कहता जग सारा,
विधियाँ, मंत्र, अपरिमित साधन
तुझे समझने के व्रत, पूजन,
पर उलझन यह अति-विचित्र सी
नहीं सुलझने का कुछ चारा,
तू ही आकर आज बता दे,
क्या मैं तेरा भेद बखानूँ?
तू असीम मैं सीमित लघुकण
तुझको मैं कैसे पहचानूँ?

—:o:—

कैसे हो आह्वान प्रिये !
ऋतुपति का गुणगान प्रिये !
    पिंजरे में श्यामा सोती है,
    परवश पड़ पीड़ा रोती है,
    यह वसन्त सुरभित क्या जाने
    जो अजस्र आँसू खोती है,
धधक रही जब उर में ज्वाला,
कैसी मादक तान प्रिये !
ऋतुपति का गुणगान प्रिये !

प्राणों में विष - सिंचन होता,
वाणी पर प्रतिबन्ध पड़ा है,
शुचि स्वतंत्रता के भावों पर
किसी क्रूर का शाप खड़ा है,
प्रतिबन्धों में पड़ी लेखनी,
कौन करे सम्मान प्रिये !
ऋतुपति का गुणगान प्रिये !
अगणित धर्म-जाति-बन्धन हैं,
ऊँच - नीच के कटु क्रन्दन हैं,
मन्दिर मस्जिद के बन्धन में
सिसक रहा मानव-जीवन है,
स्वर्ण शृङ्खला में बन्दी जग,
कहाँ मिले मधुदान प्रिये !
ऋतुपति का गुणगान प्रिये !

एक मधुमय गीत

एक मधुमय गीत तेरा !
एक लघुतम गीत मेरा !
गीत दो पर एक स्वर है,
सर्वव्यापी है, अमर है,
एक गति, लय, ताल, रागिनि,
एक सम है, अति मधुर है,
जन, विजन, चैतन्य जड़ में
एक स्वर का विमल घेरा,
एक मधुमय गीत तेरा !
एक मनहर गीत मेरा !
गीत सुख में साथ बहते,
गीत दुख में साथ रहते,
साथ ही वरदान लेकर,
साथ ही अभिशाप सहते,
साथ होती ललित सन्ध्या,
साथ ही सुख प्रद सवेरा,
मञ्जुहासिनि गीत तेरा !
है घना आलोक मेरा !

गीत दो जग प्राणप्यारे,
गीत दो जग के सहारे,
फैलकर दोनों गगन पर
लौट आते फिर अवनिपर,
क्षितिज के उस पार जाकर
साथ ही लेते बसेरा,
गीत तेरा, गीत मेरा
बीन मेरी, गीत तेरा !
आज जी भर खूब गायें,
आज जी भर मधु लुटायें,
तृप्त हो त्रैलोक्य पीकर,
शान्ति मानव मात्र पाये,
साम्य नव निर्माण कर दे
प्रिये, अब प्रिय गीत तेरा !
शक्ति पाये गीत मेरा
प्राण मेरा, गीत तेरा !

—o—

यह कैसा संसार

यह कैसा संसार प्रिये !

भरा हुआ है त्याग, राग में,
औ' संयोग-वियोग आग में,
खिलने में मुर्झाना ही है–
पतझड़ सुरभित सुमन-बाग में,

छिपा हुआ है रुदन हास में
सुख में दुख-व्यापार प्रिये !
यह कैसा संसार प्रिये !

ऊषा मुस्करा उठी

कंचन घट में भरा हलाहल,
जन्म-मरण का है क्रीड़ास्थल,
उन्नति के उत्तुंग शृंग से
बहता अवनति का जल अविरल,

मधु वीणा - तारों में झंकृत,
कैसा हाहाकार प्रिये !
यह कैसा संसार प्रिये !

क्यों ये संघर्षों के बादल,
मानव मन में उठते पल-पल
वज्र निहित विद्युत में क्यों है ?
सुन्दर यौवन भंगुर चञ्चल,

सृजन सुखद की छाती पर क्यों
विहँस रहा संहार प्रिये ?
यह कैसा संसार प्रिये !







गहन तिमिर से भरे विश्व में
पावन प्रणय-प्रकाश चाहिये !
श्रान्त पथिक को ज्वलित पंथ पर
सम्बल, दृढ़ विश्वास चाहिये !

विद्वेशों की चिता-वह्नि में,
स्वयं जला करता जो मानव—
जलकर भस्म नहीं हो पाता—
पर बन जाता हिंसक दानव,

उसे पुनः मानव बनने में
क्षमा भरा मृदु हास चाहिये !

सत्य दर्श की लिये कामना,
युग-युग से पलता-गलता जो,
गल-गलकर नित नूतनता में
विविध रूप से है ढलता जो,

उसे अमर उल्लास चाहिये,
चिरानन्द मधुमास चाहिये !

प्रलय-पयोधि प्रखर लहरों पर
वही नया निर्माण करेगा—
महा शक्ति-वर प्राप्त जिसे हो
मृतकों में नव प्राण भरेगा !

अमरों का हो भू पर मेला,
कल्पवृक्ष का वास चाहिये !

—७—

तुम मधुमय मोहक गान बनो !
शाश्वत, सुन्दर, शिव तान बनो !

भू से अम्बर तक एक लहर,
आरोही बनकर जाय बिखर,
अभिषेक चढ़े जग-कण-कण पर,
जब अवरोही उतरे मनहर,

त्रय ग्राम सप्त स्वर, मधुर मीड़,
रस—राग—भेद विज्ञान बनो !

शैशव का निश्छल सरल हास,
सुरभित सुमनों का नव विकास,
शशि स्निग्ध ज्योत्सना-रवि प्रकाश–
हो सिन्धु वीचियों का विलास,

श्रावण का मेघ मल्हार लिये,
चातक का पिहु आह्वान बनो !

श्रुतियों का जिसमें वैभव हो,
मूर्च्छना ताल शुचि अभिनव हो,
मंत्रो की जिसमें महाशक्ति,
भगवान स्वयं जिसमें लय हो,

उस विश्व-वीन के तारों की—
झङ्कार, प्रणय का दान बनो।

गा उठें दिशाएँ वह गायन,
हो जाय मुग्ध देवों का मन,
सुधि भूली किन्नरियाँ, परियाँ,
करने लग जाँय सुखद नर्त्तन,

आनन्दित हों सब लोक, भुवन,
नव अनुपम स्वर उत्थान बनो।
तुम मधुमय मोहक गान बनो।

—oo—

प्रणय के प्रिय गीत पावन गा रहा हूँ !

शून्य में जाकर धरा से—
आज शहनाई बजी है,
प्रकृति रानी आज चिर
तरुणी बनी सुन्दर सजी है,

मैं स्वरों का जाल बुन-बुन,
तिमिर तारों पर बिछाता,
हास्य स्नेहिल तिमिर का,
आलोक फिर मुझको दिखाता,

मधु स्वरों के यान पर चढ़, स्वर-लहर लहरा रहा हूं !
प्रणय के प्रिय गीत पावन गा रहा हूं !

उषा मुस्करा उठी

शलभ ने चुपचाप आकर,
साधना में सिर चढ़ाया,
दीप के स्मित से अमरता–
का नया वरदान पाया,

शलभ शाश्वत, दीप शाश्वत,
स्वर मधुर त्रयलोक छाये,
मिलन के मधुमय क्षणों में
वाद्य अमरों ने बजाये,

प्राण-तारों पर किसी का परस कोमल पा रहा हूँ !
प्रणय के प्रिय गीत पावन गा रहा हूँ !

—:o:—

यत्र-तत्र-सर्वत्र



यह आ रहा है, आ रहा है !

सरस शीतल समीरण में,
सुरभि वह भेजता अपनी,
जगाता ज्योति कण-कण में

भुवन में छा रहा है !
आ रहा है !

बजाता वेणु मधुवन में,
स्वरों से प्राण हैं चञ्चल,
न जाने क्या हुआ मन में

कि मन कुछ गा रहा है !
आ रहा है !

उषा मुस्कराई है

कमल की खोल पंखुड़ियाँ,
हँसा कर स्वयं छिप बैठा,
पलक से निरखतीं परियाँ

कहीं फिर जा रहा है !
आ रहा है !

उठाता रोर सागर में
कहीं से चाँद में हँसकर,
किरण से राग में स्वर में

सुधा बिखरा रहा है !
आ रहा है !

उतर कर कब किसी क्षण में
गहन अन्तर-गुहा में भी
सकल जड़ और चेतन में

झलक दिखला रहा है !
आ रहा है !

—:※:—

लहर मंजु मृदु गाती है



लहर मंजु मृदु गाती है!
अपने में ही हो मतवाली अपना प्यार लुटाती है!

उमड़-उमड़ कर बहती जाती,
कुछ बलखाती कुछ इठलाती,
है साजन की मिलन बावरी
फिर भी रूप छिपाती है!

लहर मंजु मृदु गाती है!

कभी उवशी-सी मदमाती,
नव गति में नव लास्य दिखाती,
नव स्वर लय में पिया रिझाती
मधुरस सार पिलाती है!

लहर मंजु मृदु गाती है!

उषा मुस्करा उठी

सोम सुधा की पीकर प्याली,
बनी किन्नरी वह मतवाली,
परिरम्भन चुम्बन में पल-पल
नव-नव रूप बनाती है।

लहर मंजु मृदु गाती है।

स्वर पर स्वर के जाल बिछाती,
बहते स्वर को पकड़ न पाती,
हँस-हँस खेल मुक्ति-बन्धन के
खेल—खेल मुसकाती है।

लहर मंजु मृदु गाती है।

सखियों से कर मधुर ठिठोली,
भरती नव-जीवन की झोली,
करती है कल शोर प्राण में—
पी के प्राण मिलाती है।

लहर मंजु मृदु गाती है।

●

उषा मुस्करा उठी

पथ-पथ पर स्वर दीप जलाता,
तिमिर मिटा भय भ्रान्ति मिटाता,
स्नेह सुधा का स्निग्ध सिन्धु बन
जन मन में लहराता हूँ मैं।
बीन बजाकर गाता हूँ मैं।

नील गगन से गुञ्जन लाकर,
अन्तरिक्ष में प्रणय जगा कर
क्षिति-तट श्याम मनोहरता पर,
स्वर-किरणें बिखराता हूँ मैं।
बीन बजाकर गाता हूँ मैं।

ध्वनियों पर ध्वनियाँ उठती हैं,
नर्तन पर नर्तन करती हैं,
पवन झकोरों में पागलपन
देखो आज दिखाता हूँ मैं।
बीन बजाकर गाता हूँ मैं।

लोक-लोक की अगणित तानें,
लोक-लोक के अगणित गाने,
एक ताल-सम-लय पर अटके
समरस सुधा पिलाता हूँ मैं।
यही ऐक्य समझाता हूँ मैं।
बीन बजाकर गाता हूँ मैं।





भैरवी, भीषण प्रलय के गीत गाती क्यों नहीं है ?
सुप्त वीणा तार पर भैरव जगाती क्यों नहीं है ?

हो रहे हैं आज कितने देख अत्याचार जग में,
देख कितने हो रहे हैं पाप के व्यापार जग में,
अन्न का, औ' वस्त्र का है आज हाहाकार जग में,
मानवों ने है बढ़ाया दानवी संहार जग में,

रुधिर लोलुप रक्त रसना तू दिखाती क्यों नहीं है ?
लुब्ध किस शव पर हुई आकर बताती क्यों नहीं है ?

ऊषा मुस्करा उठी

आज कितने वन पुजारी पूजते पाषाण प्रतिदिन,
लूटते बलि वेदियों पर मूक पशु के प्राण प्रतिदिन,
डोर सत्ता की लिये कुछ मत्त करते गान प्रतिदिन,
पीड़ितों के प्राण लेकर कर रहे उत्थान प्रतिदिन,

देखती निर्जीव सी तू दौड़ आती क्यों नहीं है ?
शत्रु-दल पर ध्वंश का ताण्डव मचाती क्यों नहीं है ?

जन्म भू से और जननी से बड़ी जो पूज्य धात्री,
लोक क्या त्रैलोक्य-सुख की जो सदा से है विधात्री,
मधुर पय सबको पिलाती विश्व की जो प्राणदात्री,
कट रही गोएँ हमारी पुष्टिकर्त्री प्राण दात्री,

अब भला भू काँप कर जल में समाती क्यों नहीं है ?
धरा में धँस नाम अपना तू मिटाती क्यों नहीं है ?

एक शासन-भार भी सहना भला कितना कठिनतर,
पर यहां पर बढ़ रहा है शासकों का भार दुखकर,
धनिक बन्धन, पूज्य नेता औ' बड़ों के विकट बन्धन,
शृङ्खला परतन्त्रता की शक्त होती है निरन्तर,

बन्धनों को तोड़ कर जड़ से हटाती क्यों नहीं है ?
मौन अपना छोड़ सब कुछ देख जाती क्यों नहीं है ?

क्यों न उच्छ्वासों पवन निश्वास में भर आज लाती,
क्यों न झंझावात स्वर भर मत्त मदिरा तू बहाती,
क्यों न सागर-लहरियों में एक हलचल सी मचाती,
क्यों न पर्वत श्रेणियों में गहन प्रतिध्वनि तू जगाती,

अट्टहासिनि ! वाद्य मारू का सुनाती क्यों नहीं है ?
खिलखिलाकर विश्व को झकझोर जाती क्यों नहीं है ?

क्यों न चपला घन चमकती, क्यों न बादल घन गरजती,
क्यों न अम्बर को हिलाती, क्यों न पाहन घन बरसती,
क्यों न चञ्चल चरण तेरे तड़ित गति से थिरक जाते,
प्रेत-प्रेतिनि-भूत-भैरव क्यों न तेरे संग गाते,

मुण्डमालिनि ! शत्रु-मुण्डों को उड़ाती क्यों नहीं है ?
खोल लोहित नेत्र पशुता को जलाती क्यों नहीं है ?

तोड़ कर छोटे-बड़ों के जाति धार्मिक सब झमेले,
क्यों भला सब गोद तेरी में न सुख से खेल खेले,
क्यों न मिलकर साथ ही दुख-शोक सब जग साथ झेले,
क्यों न मानव प्रेम के हों विश्व में नित प्रेम-मेले,

मन्त्र नव निर्माण का आकर सिखाती क्यों नहीं है ?
भीरुता की भावना जग से भगाती क्यों नहीं है ?



तुम नित आते



मुझे जगाने तुम नित आते ।
गीत सुनाने तुम नित आते ।।

लास्यमयी चिर सुखद सहचरी,
शुचि यौवन मधुभरी गागरी,
छोड़ प्रेयसी नवल नागरी

सोये मानस को छू जाते
मुझे जगाने तुम नित आते ।



मौन स्वरों में गुन-गुन गुनकर,
शाश्वत स्वर से भरते अन्तर,
प्राण बना देते तुम सुन्दर

सम्मुख रह मृदु-मृदु मुसकाते
मुझे जगाने तुम नित आते!

तुम्हें ढूँढने को जब आती—
उषा रश्मियों पर इठलाती,
देख तुम्हें अरुणिम् बन जाती

उस लाली से मुझे खिलाते,
उज्ज्वल-उज्ज्वल मुझे बनाते!
गीत सुनाने तुम नित आते!

—o—

धूप छाँह



महातिमिर के महालोक में
एक महा दीपक जलता है,
तिमिर यहीं आलोक यहीं है
दोनों में अद्भुत समता है।

दीपक के आश्रय में रहकर
वीतराग हो तम है सोता,
लौ बलखाती, दीप झाँक कर
देख तिमिर को पुलकित होता

चिर-युग का दोनों का नाता
पावन प्रेम यहाँ पलता है।

उषा मुस्करा उठी

नील गगन के उर विशाल में
तम का सागर है लहराता,
सुधा रश्मियों का शशि घुलकर
वसुधा पर अभिषेक चढ़ाता।

प्रातः उषा लिये रवि हँसता
निशा तिमिर उस पर ढलता है।

ज्ञान, अज्ञता पर जो हँस दे
तो वह उत्तम ज्ञान नहीं है,
विजय, पराजय पर इठलाये
तो यह भाव महान नहीं है

मिथ्या तम है, सत्य ज्योति है
धूप-छाँह का रथ चलता है।
साथ-साथ यह रथ चलता है।

—:※:—

गीत न नूतन लिख पाता हूँ

गीत न नूतन लिख पाता हूँ !

लेकर कुछ स्मृतियाँ अतीत की
मैं अपना मन बहलाता हूँ !

हिमगिरि के ऊँचे शिखरों सी
उन्नत है मादक अभिलाषा,
गगन विहारिणि मधुर कल्पना
मानवता की शुचि शुभ आशा,

सत्य ज्योति के दिव्य दर्श कर
उसमें ही मैं खो जाता हूँ !

ऊषा मुस्करा उठी

महासिन्धु के पागलपन का—
अट्टहास्य है देखा मैंने !
किंकिणि क्वण-क्वण नूपुर मृदु स्वन
मदन लास्य है देखा मैंने !

उलझ-उलझ कर उन सपनों में
वही गीत फिर-फिर गाता हूँ !

संसृति "मैं" बन गया अकेला,
अपने में संसृति को पाया,
साम्यवाद का नाम बताकर
वही पुराना राग सुनाया,

प्रगति पंथ पर पाँव बढ़ा कर
लौट उसी पथ पर आता हूँ !
फिर अतीत के स्वर गाता हूँ !





लोग मुझे कहते हैं पागल !
पर इससे कब मैं हूँ चञ्चल !

मुझे छले जग पर न किसी को मैं छलता हूँ,
विष को अमृत समझ उसी से मैं पलता हूँ,
दीपक सा जल-जल गल-गल फिर मैं जलता हूँ,
अपने पथ पर अपनी गति से मैं चलता हूँ !

छल-छल करता पल-पल बढ़ता
मेरा जीवन निर्झर कल-कल !

सब कुछ देकर जो कुछ जग से पाया मैंने,
वही प्राप्त हँस-हँस कर सदा लुटाया मैंने,
जिसमें जन-कल्याण गीत वह गाया मैंने,
सुगम शान्ति-पथ सुमनों का दिखलाया मैंने,

ज्योति-सिन्धु की लहरों पर मैं
झूम-झूम कर चलता प्रतिपल

उषा मुस्कराई उठी

जिसको दृष्टि चूमती मेरी
वही चमक हो उठता उज्ज्वल !

नील गगन में नीड़ बना मृदु वेणु बजाता,
युग-युग का साथी आकर सम्मुख मुसकाता,
कमल-करों में बाँध मुझे वह भी बँध जाता,
सत्य और शिव, सुन्दर का नव देश बसाता,

मैं जाकर जग-हित फिर आता
अपने साथी का ले सम्बल !
मैं अमृतत्व प्राप्त हूँ निश्छल
क्या समझे जग कैसा पागल
बस कह देता जग, यह पागल
पर न कभी मैं होता व्याकुल !

—:⁂:—

मुक्त प्रणय



दीप की लौ ने गाया गीत !
शलभ में प्रकटी पावन प्रीत
हुए मिल दोनों एकाकार,
बन गया मधुर महा सङ्गीत !

पवन बहता है पङ्ख पसार,
पङ्ख पर बिछा स्वरों का प्यार,
लक्ष्य है नील गगन की ओर
गगन में गुञ्जित है झङ्कार !

एक स्वरबाला है सुकुमार,
मिलाती उर तन्त्री के तार,
युगों से बैठ पिरोती हार
बहाती स्वर-रस की मधुधार !

नूपुरों का रव अमिट अपार,
कण्ठ में खग-कुल के साकार,
धरा पर आने को आकुल
अमित कर करता है विस्तार !

मेघ में उमड़ा नव-नव नाद,
दिशाओं में झूमा उन्माद,
प्रणय का बिखराती सन्देश
चञ्चला चमकी ले आह्लाद !

स्वाति की कुछ बूँदें कर पान,
पिहू-पिहु पंछी भरता तान,
मयूरी के हैं उन्मुख प्राण
मेघ सुनता मयूर का गान !

मुक्त स्वर-सरिता का कल्लोल,
कान में देता मधु-सा घोल,
सिन्धु से खुला खुला अभिसार
उठाता पल-पल नव हिल्लोल !

रसिक मधुकर जब करता गान,
गान में भर अनुपम विज्ञान,
सुनाता अपने उर की बात
सुमन सौरभ में हँसते प्राण !

दीप के जलने की मुस्कान,
शलभ का करती है आह्वान,
शलभ भी देकर अपने प्राण
ज्योतिका करता हँस-हँस पान !

प्राण में मिल जाते हैं प्राण,
विहग बन भरते मादक तान,
व्योम के अन्तर का प्रिय गान
धरा पर आता बन वरदान !

दिया अपने अन्तर का प्यार,
बन गया दिया तिमिर आधार,
कल्पना सुन्दर सुखद अपार
दिये के स्रष्टा धन्य कुम्हार !

अनल जल धरती व्योम समीर,
इसी से बनता दिव्य शरीर,
धरा में इन पाँचों का मेल
दिया लघु बना धरा उर चीर !

मृत्तिका है इसमें साकार,
छिपा है सब तत्वों का प्यार,
तत्व में रहता है चैतन्य
दिया करता है ज्योति प्रसार !

दिया ही दिया व्योम ने दिया,
धरा ने दिया, मनुज ने दिया;
सूर्य्य ने दिया, चन्द्र ने दिया
धन्य वह, सब कुछ जिसने दिया !

कमल-दल अपनी आँखें खोल,
सुरभि से बिखरा कर कुछ बोल,
भ्रमर का करता है आह्वान
पिलाने जीवन मदिरा घोल !

घटाएँ जब घिर करतीं शोर,
नाच उठता मेरा मन-मोर,
चञ्चला क्षण-क्षण जाती चमक
हृदय में आता तू चितचोर !

उषा का नव अनुपम शृङ्गार,
छेड़ता रहता उर के तार,
स्वरों का मादक-सा संसार
प्राण में ला देता है ज्वार !

विहँस कर खिलते प्राण-प्रसून,
प्राण से मिलते प्राण-प्रसून,
सुरभि से मादक बना दिगन्त
हार बन हिलते प्राण-प्रसून !

स्वरों मे है उठने का मोह,
खींचता अधर-अधर अवरोह,
धरा से अम्बर का है मिलन
मिलन मे सुख-सुख का सम्मोह !

मुझे है केवल तुमसे प्यार,
देखता मैं तुझमें संसार,
उदधि में उठती प्रणय-हिलोर
इन्दु करता रजनी शृङ्गार !

द्वैत ही है मेरा आधार,
एक 'मैं' 'तू' बनता साकार,
शून्य में शाश्वत स्वर की ज्योति
ज्योति में तेरी झलक उदार !

वेद के सूत्र, सूत्र का ज्ञान,
ज्ञान में अन्तहीन विज्ञान,
अमिट है सत्ता एक महान
गगन मे शाश्वत जिसका गान !

प्राण में प्राण, श्वास में श्वास,
तुही तो कण-कण का मधुहास,
तुही सत् चित् आनन्द अपार
साम, यजु, ऋक तेरा उच्छ्वास !

भेद का यहाँ भला क्या काम,
ईश तू ईशा तेरा नाम,
देखता मैं तो आठों याम
सभी में तेरी मृदु मुसकान !

शून्य लगता है यह संसार,
प्राण का तुझ बिन भारी भार,
निठुर क्यों बन बैठा है तू
रिक्त क्या हुआ प्यार भण्डार ?

चाहने वाले तुझे अनेक,
किन्तु मुझसा मैं केवल एक,
हृदय में आकर मेरे देख
कहेगा तेरा सत्य विवेक !

कभी तू आ जाता है पास,
बुझा लेता हूँ कुछ-कुछ प्यास,
भड़कती विरह वह्नि की ज्वाल
जागती रहती फिर भी आश !

एक प्याले में थोड़ी ढाल,
समझता तू कर दिया निहाल,
सिन्धु पी जाने की है शक्ति
पिला अपनी आँखो में डाल।

वृष्टि ने लिया धरा को चूम,
धरा पर मची अजब सी धूम,
पुलक से खुले कली के पलक
स्वयं पर कली उठी लो झूम।

गगन सा मैं कर लूँ विस्तार,
लुटा दूँ सारे जग में प्यार,
प्यार से झूम उठें सब लोक
पूर्ण हों रिक्त प्राण भण्डार!

—००—

भूल बैठी हो कहाँ तुम



भूल बैठी हो कहाँ तुम शीघ्र आओ, शीघ्र आओ !
मैं अकेला व्यथित बैठा, हृदय में मेरे समाओ !

मेघ ये आषाढ़ के कितने मनोहर झूम आये,
बरसतीं मधुमय फुहारें, मोर का कल-शोर भाये !

बीन लेकर हाथ में तुम मानिनी, मृदु गीत गाओ !

पंछियों का एक जोड़ा वृक्ष पर बैठा विहँसता,
विजन में अज्ञात का अभिसार है, कितनी सरसता !

अधर अधरों से मिलाओ, प्राण प्राणों में मिलाओ !

एक मधु की बूँद पीकर आज तक मैं जी रहा हूँ,
स्मृति-स्मित हास्य का मधु आज तक मैं पी रहा हूँ !

आज अब जी खोलकर अमरत्व की मदिरा पिलाओ !

आज मैं जग भूल बैठा और जग ने भी भुलाया,
स्नेह-कड़ियाँ आज टूटीं आज छूटी विश्व माया !

बात युग-युग की प्रिया, तुम आज आकर के निभाओ !
मैं अकेला व्यथित बैठा हृदय में मेरे समाओ !



अवगुण्ठन खोलो



प्रेयसि, अवगुंठन खोलो !

नश्वर है यह भंगुर जीवन
झरता बहता प्रतिपल प्रतिक्षण,
वृथा अहं के मायापट में
क्या सुख है ? मन में तोलो !
प्रेयसि, अवगुंठन खोलो !

कल-कल कर क्यों मृदु मुसकाती
तृषित हृदय में तृषा बढ़ाती,
आज सुधा सौन्दर्य पिला कर
पञ्चम में पिक् सी बोलो !
प्रेयसि, अवगुंठन खोलो !

उषा मुस्करा उठी

क्यों आशा के दीप जलाती,
क्यों मानव को तुम बहकाती,
क्षणिक क्षणों हित निज अतीत के
पापों को प्रेयसि, धोलो।
प्रेयसि, अवगुंठन खोलो!'

नवजीवन नवज्योति दिखादो,
भावों का नव स्रोत बहादो,
तोड़ अरी, संसृति के बन्धन,
अब मेरी अपनी हो लो।
प्रेयसि, अवगुंठन खोलो!'

एक जगा दो प्यारी सिहरन,
जड़ में ला दो चञ्चल चेतन,
द्वैत मिटा कर प्रणय मिलन में
कुछ जागो, कुछ-कुछ सोलो।
प्रेयसि, अवगुंठन खोलो!'

परहित अर्पण कर निज तन मन,
धन्य बनालो पावन जीवन,
मानवता के चिर गायन का
कानो में मधुरस घोलो।
प्रेयसि, अवगुंठन खोलो!'

द्वार खोल



क्यों बन्द अरी करके बैठी है द्वार ?
उठ देख कौन यह लिये खड़ा उपहार !

कुछ जन सुमनों के भर-भर डाले लाते,
सुरभित मालाएँ सुख से भेंट चढ़ाते,
कुछ रो-रोकर हँस गाकर तुझे रिझाते,
मानस पर तेरी छवि का ध्यान लगाते,

पर इसके खाली हाथ नहीं कुछ लाया,
सारा जग सोया शान्त देख यह आया !

बैठा है तेरे द्वार मौन सुधि खोकर,
सर्वस्व त्याग आया है निर्भय होकर !

अर्पण करने को सारे जग व्यवहार
अर्पण करने को प्यार और शृङ्गार !
है तुझमें सीमित अब इसका संसार
प्रतिश्वास श्वास में है तेरी झंकार

यह सौंप चुका है तुझे प्राण सुकुमार,
उठ खोल द्वार, तू शीघ्र इसे स्वीकार !
उठ देख, कौन यह लिये खड़ा उपहार !

—oo—

कैसे दीप जलाऊँ



कैसे दीप जलाऊँ मैं ?

निष्ठुर पवन झूम आता है,
रह-रह झाँक-झाँक जाता है,
अधर चूमता स्निग्ध ज्योति के
और बुझाकर हर्षाता है,

ऐसे प्रबल प्रहारों से फिर
क्योंकर इसे बचाऊँ मैं !

कैसे दीप जलाऊँ मैं ?

वार-वार मैं दीप जलाता,
द्वार वन्द कर ध्यान लगाता,
पर छिद्रों से पागल अन्धड़
साँय-साँय कर विकल वनाता,

पवन रहित पावन मन्दिर अव
वोलो कैसे पाऊँ मैं ?

कैसे दीप जलाऊँ मैं ?

वायु स्तम्भन-मंत्र सिखा दो
पूर्ण प्रभामय लौ दिखला दो
हो चैतन्य प्रकाश चतुर्दिक
ऐसा मानस को विकसा दो,

रोक व्यथा-भ्रम-सिहरन कह दो
कैसे इसे सजाऊँ मैं ?

कैसे दीप जलाऊँ मैं ?

—:*:—

रे पंछी

रे पंछी यही है अपना देश !

यहाँ प्यार है राग रंग है
दुख है दुख पर सुख प्रसंग है,
यहाँ त्याग से जीत लिया हँस—

हमने जग का द्वेष !
रे पंछी यही है अपना देश !

यहाँ भक्ति के सुमन खिले है
सन्त परस्पर विहँस मिले हैं,
यहाँ रंक की नहीं भावना

सब है यहाँ नरेश !
रे पंछी यही है अपना देश !

यहीं कहीं तुम ठाठ जमा लो
जी भर हँस लो जी भर गा लो,
पर-हित और परार्थ बना लो

अपना लक्ष्य विशेष।
रे पंछी यही है अपना देश।

प्रकृति-नटी का अन्तर विकसा
आलोड़ित मन सागर सहसा,
शास्वत है आनन्द चतुर्दिक

सबका सौम्य सुवेष।
रे पंछी यही है अपना देश।

यहाँ मेघ गुरु-गुरु गाते हैं
बरस-बरस कर सुख पाते हैं,
सरिता, निर्झर कल-कल बहते

रुकते कहीं न लेश।
रे पंछी यही है अपना देश।

—:o:—

यह तिमिर कैसे मिटाऊँ



दीप मैं क्योंकर जलाऊँ?

वासनाएँ आँधियाँ बन
औ' प्रलय का रूप धर कर
ध्वंस का ताण्डव मचाती
आ रही हैं उतर मन पर

धूल ही से भर गया जब
दीप लघु कैसे सजाऊँ?

ऊषा मुस्कराउठी

टिमटिमा कर गगन के ये
दीप हैं मुझको चिढ़ाते,
विवशता पर आज मेरी
क्रूरता से मुस्कराते,

एक दिन है पतन इनका
यह इन्हें क्योंकर बताऊँ?

पवन के कोमल परस से
दीप जो चिर मुक्ति पाता,
व्यर्थ का साहस दिखा जग
क्यों उसे फिर-फिर जलाता

तू बता दे आज संगिनि
यह तिमिर कैसे मिटाऊँ?

दीप मैं क्योंकर जलाऊँ।

—o—

दीप आत्मकथा



दीप है मैंने जलाया !

आदि युग से जल रहा है
दीप यह सुन्दर सुहाना,
जल रहे हैं शलभ हँस-हँस
मरण भय किंचित न माना,

आज मैं भी दीप लौ की
ज्योति बनकर जगमगाया !
दीप है मैंने जलाया !

आँधियाँ अगणित चलें पर
शक्ति क्या जो लौ हिला दे,
क्रूर झंझा के झकोरे
शक्ति क्या जो लौ बुझा दे,

वैभव लुटाता जा रहा हूँ



मैं अकेला जा रहा हूँ!

फूल देकर शूल लेता,
रुदन लेकर हास्य देता,
शुष्क पथ को लहलहाता
स्वर्ग उपवन सा सजाता,

विकट मरु में स्नेह के
सोते-बहाता जा रहा हूँ!
मैं अकेला जा रहा हूँ!

बांट कर सुख, दुख मिटाता,
विजय-पर दे हार पाता,
घृणा को दे प्यार सुन्दर—
भ्रान्ति को दे शान्ति सुखकर,





चल पड़ा जब रोक सकता कौन सा बन्धन यहाँ का !

फूलमय पथ शूलमय बन जाय तो परवाह क्या है,
मलय-मंजुल वायु यदि बन जाय झंझा आह क्या है,
शरत-घन की ज्योत्सना बदले प्रलय के बादलों में,
चल सकूँगा अनल पथ पर कठिन मुझको राह क्या है,
प्राण में है प्राण जब तक अनवरत चलता रहूँगा,
छोड़ कर सब प्रिय जनों का प्यार औ' क्रन्दन यहाँ का !

प्रेम से कल गान गाकर स्नेह से सरिता बुलाती,
विश्व की रङ्गीनियाँ भी लोरियाँ देकर सुलाती,
पर रुकूँ क्योंकर भला है लक्ष्य पर मुझको पहुँचना—
छोड़कर वन रम्य उपवन हरित वसुधा लहलहाती,
मधुर विहगों का चहकना सरस गायन किन्नरों का,
रोक सकता है न मुझको तालमय नर्तन यहाँ का !

तोड़ कर सब विघ्न-बाधा पहुँच जाऊँगा वहाँ पर,
लौट आऊँ शक्ति साहस साधना अमरत्व फिर भर,
चाह के अनुकूल सबके मैं रहूँ सब कुछ लुटाता,
विहँस जन-मन तृप्त मैं करता रहूँ बनकर अभय वर,
क्यों भला हिंसा रहेगी, क्यों भला फिर द्वेष होगा—

सत्य शिव सुन्दर बना दूँ जब कि मैं जीवन यहाँ का!
चल पड़ा जब रोक सकता कौन सा बन्धन यहाँ का!



मधुकर क्यों नीरव है

मधुकर क्यों नीरव है!
शिथिल आज वाणी तेरी क्यों—
शिथिल सभी अवयव है!

गुन गुन गायन छोड़ दिया क्यों,
कलियों से मुख मोड़ लिया क्यों,

कंज-रेणु से विरत करे यह—
कैसा नव आसव है!
मधुकर क्यों नीरव है!

आया पावन मलय झकोरा,
करने तुझसे प्रणय निहोरा,
पर तू क्यों उन्मन हो बैठा
करता क्या अनुभव है!
मधुकर क्यों नीरव है!

उषा मुस्करा उठी

सुमन सुरभि में वही लास्य है,
कुंज-कुंज में वही हास्य है,
मधु मदिरा बिखरा–वसन्त–शिशु–
भृंग बनाता भय है!
मधुकर क्यों नीरव है!

मंजु मृदुल मोहक स्वर सुन्दर,
छाया सरिता की लहरो पर,
चंचरीक, चञ्चल, चुप रहना
कह कब तक सम्भव है!
मधुकर क्यों नीरव है!

क्या समाधि में भक्त सो गया,
द्वैत भुलाकर एक हो गया,
याकि मानकर बैठे मोहन
मौन वेणु का रव है!
मधुकर क्यों नीरव है!

ज्योति-पुञ्ज के सिन्धु विमल में,
ढूँढ़ रहा क्या उदधि अतल में,
मधुर स्वरों रागों का तुमको
करना शुचि उद्भव है !
मधुकर क्यों नीरव है !

अपने स्वर का जाल बिछा कर,
बन्दी कर ले सब को सत्वर,
विहगों के कण्ठों से बहता
प्रेम-स्रोत अभिनव है !
मधुकर क्यों नीरव है !

मानवता है खोई—खोई,
भव्य भावना सोई—सोई,
अरे, तुझे तो स्वर गुञ्जन से
गढ़ना अति मानव है !
मधुकर क्यों नीरव है !

—:०:—





प्रिय तुम्हारी भावना के सघन बादल !
झूमते, झुकते, उमड़ते, बरसते हैं विकल चञ्चल !
लास्य ले रिमझिम स्वरों का
प्रिया के प्रिय नूपुरों का,
मूक वसुधा को हँसाने, झर रहे हैं आज पल-पल !
इन्द्र धनु पर वेणु लेकर,
विहँसते हैं छेड़ नव स्वर,
स्वर परस से पिघल गिरि उर बना निर्झर सुखद कल-कल !
ज्योति के कुछ कण लुटाती,
चपल चपला थिरक जाती,
प्रणय-धारा बहा जग पर कर रहे हैं तृप्त जल-थल !
प्रिय तुम्हारी भावना के सघन बादल !
झूमते, झुकते, उमड़ते, बरसते हैं विकल चञ्चल !

तेरा मधुमय स्वर



मैं मन की वीन बजाता हूँ
तेरा मधुमय स्वर सुनकर !
मैं त्रिभुवन का सुख पाता हूँ
तेरा मधुमय स्वर सुनकर !

स्वर-सरस शान्त है व्याप्त विश्व कण-कण में,
स्वर सुप्त चेतना-शून्य गगन प्राङ्गण में,

स्वर अमृतमय
स्वर ज्योतिर्मय
स्वर जरा जन्म से रहित
बनाता है निर्भय,

•

मैं उसी स्नेह-स्वर की मधु मदिरा पीकर,
चैतन्य प्रभा पावन से लेता जी भर;

उषा मुस्करा उठी

मैं तेरे गीत सुनाता हूँ
तेरा मधुमय स्वर सुनकर,
जग में आनन्द लुटाता हूँ
तेरा मादक स्वर सुनकर।

तुझ रूप राशि को देख चकित हो जाता
तुझ रूप राशि से युग-युग का है नाता,

तुझ सा सुन्दर
तुझ सा मनहर,
तू है, असीम हे महाप्राण
हे सर्वेश्वर।

मैं भूल विश्व को जाता तेरा होकर,
सब कुछ तुझ में पाता हूँ सब कुछ खोकर;

मैं सुधा-सिन्धु बन जाता हूँ
तेरा मधुमय स्वर सुनकर,
आलोक नया बिखराता हूँ
तेरा मधुमय स्वर सुनकर।



सुन चुका सन्देश तेरा
आ रहा मैं आ रहा हूँ!
दूर रहकर भी प्रिये!
मैं गीत तेरे गा रहा हूँ!

तू समझती मैं विरह में
दिवस-निशि रोकर बिताती,
मेघ पावस के बने हैं—
नयन, पर आती न पाती,

किन्तु यह भी सत्य सुन्दरि,
हैं यहीं पर प्राण मेरे
शून्य तन-मन, शून्य जीवन
पास तेरे गान मेरे!

हास्य तेरा देख स्मृति में
शान्ति कुछ-कुछ पा रहा हूँ!

हम भला कब पृथक होते
तन पृथक पर प्राण साथी,
चिर-युगों का साथ अपना
युग-युगों के गान साथी,

मैं बना हूँ नील अम्बर
नील वसुधा तू सुहानी,
नित्य नव यौवन हमारा
नित्य नव यौवन कहानी,

आज पी मधु खोलकर जी
मैं पिलाता जा रहा हूँ।
दूर रहकर भी प्रिये!
मैं गीत तेरे गा रहा हूँ!

—०—

आँसू तुम्हें पुकारे



आँसू तुम्हें पुकारे !

बूँद-बूँद गिर-गिर कर खोये,
धरती के सँग मिलकर रोये,

कण-कण वन खग व्याकुल फिरते
ढूँढ-ढूँढ कर हारे !

सूख-सूख कर भर-भर आये,
पतझड़ वन फिर पावस लाये,

उषा मुस्कराई है

खारे सागर में मिल चञ्चल
मिट-मिट जाते तारे!
आँसू तुम्हें पुकारे!

शशि बन एक बूँद ने देखा,
मिली न अबतक सीमा-रेखा,

प्राण-प्राण में मिले न जब तक
कैसे धीरज धारे!
आँसू तुम्हें पुकारे!

—:*:—

ऊषा मुस्करा उठी



वेणु गीत सुन मन की वीणा बोल उठी है।

असतो मा सद्गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्माऽमृतंगमय,

कवि के दिव्य भाल पर हंसकर—
ऊषा ने जय-तिलक किया है

धीरे—धीरे कंज—कली ने,
सिहर—सिहर उर खोल दिया है।

सौरभ दिग-दिगन्त में बिखरा,
कण-कण में नव प्राण जगा है!

मधुकर के गुन-गुन गुञ्जन में
जीवन का नव गान जगा है,

अमृत पुत्र की अमर साधना,
अब अपने दृग खोल उठी है!

वेणु-गीत सुन मन की वीणा बोल उठी है!

—oo—

तुम विहँस रहे



तुम विहँस रहे हो जल-थल-वन-उपवन में प्रति प्राङ्गण में !
अणु-अणु में पशु-पक्षी में, जग-जीवन मे, जड़ चेतन में !

बन कर वर्षा तुम वन को हरा बनाते,
वन पशु बनकर क्षण में तुम ही चर जाते,
कँकरीली भू मरु भू में खेल रहे हो,
पर्वत श्रेणी से बन कल धार बहे हो,

संकेत तुम्हारा होता नील-गगन में औ' कण-कण में !

तुम सरिता में नव यौवन लहर उठाते,
मिल सागर में अपना अभिसार मनाते,
तुम लहर-लहर में चुम्बन वाद्य बजाते,
तुम विश्व प्रणय का स्वर सङ्गीत सुनाते,

नभ पुरुष शान्त रति करते प्रकृति मिलन में-उस निर्जन में !

तुम सुमनो में बन सुरभि पवन बन जाते,
सौरभ सन्देशा दे मधुपों को आते,
निज हृदय खोलकर मत्त पराग लुटाते,
वे सुधि भूले से गुन-गुन गायन गाते,

तुम अनासक्त हो हर कृत सञ्चालन में—जग पालन में !

तुम सब में हो पर छिपे दृष्टि से रहते,
भूले मानव को अन्तर से कुछ कहते,
तुम सत्य तुम्हीं शिव परम तत्व शुचि सुन्दर
तुम पूर्ण ब्रह्म अखिलेश्वर हो सर्वोपर,

भर विश्व-प्रेम दो मेरे नन्हें मन में, ले चरणन में—
अणु-अणु में, पशु-पक्षी में, जग-जीवन में, जड़-चेतन में।

—:o:—





तू एक बार, कैसा है यह संसार, बता दे आकर !
क्यों प्यार बना है जग-जीवन-आधार बता दे आकर ?

क्यों लता माधवी लिपट वृक्ष से जाती ?
क्यों सरिता सिन्धु-अङ्क में छिप सुख पाती ?
क्यों सुरभि कोष में मधुप मौन सो जाता ?
क्यों मृग मृदु स्वर सुन भूल स्वयं को जाता–

वह कैसी मोहक वीणा की झङ्कार बता दे आकर !
क्यों प्यार बना है जग-जीवन-आधार बता दे आकर ?

क्यों देख सिन्धु को शशि चञ्चल बन जाता ?
उच्छ्वास तरङ्गों को लेकर क्या गाता ?
क्यों चन्द्र, चकोरी को प्रिय प्यार पिलाता ?
क्यों कुमुदिनि पर वह मधुरस धार बहाता ?

इन सबके मन के कौन मिलाता तार बता दे आकर !
क्यों प्यार बना है जग-जीवन-आधार बता दे आकर ?

क्यों मेघ-हृदय से चपला झाँक रही है ?
किस विरह-मिलन की छवि वह आँक रही है ?
शत-शत रङ्गों का कौन लगाता मेला ?
मुसकाता इन्द्रधनुष पर कौन अकेला ?

क्या नभ-थाली में तारों का शृङ्गार बता दे आकर !
क्यों प्यार बना है जग-जीवन-आधार बता दे आकर !

क्यों श्याम श्यामता का यह मधुर मिलन है ?
कितने युग-युग का नित नव आकर्षण है ?
क्यों धरा और अम्बर का आलिङ्गन है ?
क्यों अन्तहीन अधरों का चिर चुम्बन है ?

यह किसका अनुपम प्यार भरा अभिसार बता दे आकर !
क्यों प्यार बना है जग-जीवन-आधार बता दे आकर !

तू आकर प्रेयसि, सारे भेद बता दे,
तू आकर सुन्दरि, विरह-विषाद मिटा दे,
छू कोमल-कर से सोये तार जगा दे,
गीतों का मधु तू आकर स्वयं पिला दे !

क्या जीवन में शाश्वत यौवन-उपहार बता दे आकर !
क्यों प्यार बना है जग-जीवन-आधार बता दे आकर !

—:*o*:—

ठुकरा सकोगे

मैं तुम्हारे द्वार पर लो आ गया हूँ !
क्या भला ठुकरा सकोगे ?

वेणु-स्वर मधुरिम सुनाकर
क्या न तुमने ही बुलाया !
स्वप्न में खोया हुआ था
क्या न तुमने ही जगाया !

तम भरी गहरी निशा में
पाँव काँटो पर बढ़ाता,
छोड़ सुख-दुख अभय होकर
रक्त धरती पर चढ़ाता,

लक्ष्य अपना आज जब मैं पा गया हूँ,
क्या भला ठुकरा सकोगे ?

कविता कामिनी



सुख से प्रासादों में कलतक,
मैं करती थी हँस-हँस क्रीड़ा।
आज कुटीरों का सुन क्रन्दन
रुला रही है मन की पीड़ा।

मैंने बल पौरुष पाया था
वन में और गहन कुञ्जन में,
निर्झर के-छल छल-सरिता के—
कल-कल—भ्रमरों के गुञ्जन में।

युग-युग से कर अमित साधना
कवियों ने था मुझको पाया।
रखकर मुक्त, विविध छन्दों से—
नित नव मेरा रूप सजाया।

प्यार हृदय का देकर पाला
जीवन का तप तेज मिलाया।
नित-नव-रस भावों से सींचा
सुख-वैभव के शिखर चढ़ाया।

पर, मैं भूली रम्य वनों को,
भूली उस पावन जीवन को;
कब, प्रासादों के वैभव ने
बरबस बाँधा मेरे मन को।

कैसे अपना मुख दिखलाऊँ।
नत-मस्तक है उर में व्रीड़ा,
छली गई जाने मैं कैसे
किसने दी है कृत्रिम-क्रीड़ा?

धिक् यह क्रीड़ा जिसमें पीड़ा,
जग का यह अभिशाप लिया है;
किस मुख से कहदूँ अपनालो!
क्या मैंने कुछ त्याग किया है।

बीते कुछ वर्षों में मैंने—
धनिकों के मन हैं बहलाये।
मदिर-मत्त मदिरा के प्याले
हँस-हँस कर भर पिये-पिलाये।

छन्-छन् छुम-छुम छनन-छनन छन
पायल के मृदु बोल सुनाये।
रुनझुन रुनझुन रुनन रुनन झुन—
नूपुर रुनझुन नृत्य दिखाये।

झननन झँकृत हृदय हो उठा,
गीतों के रस-स्रोत बहाये।
वीणा के मादक तारों से
जाने कितने स्वर बिखराये।

पश्चाताप मरण को अब तो
वरण किया, जी जाग उठी हूँ।
क्षमा किया कह दो बस इतना,
मैं तप कर हो आग उठी हूँ!
ज्योतिर्मय जल आग उठी हूँ!!

उगामुस्कराउठी

दलित किसानों-मजदूरों पर
अत्याचार न जाते देखे।
कृश शिशु-जीवित कङ्कालों के
हाहाकार न जाते देखे॥

जीभर नाच दिखाया जिनको,
उनको नाच नचाऊँ जी भर।
वन्य-कुटीरों का महलों पर,
नव तम देश वसाऊँ जी भर।
सुन्दर साज सजाऊँ जी भर॥

ताजमहल, मन्दिर-मस्जिद ये
ये गिरजा घर ये मीनारें
खड़ी रक्त मानव का लेकर
ये सब महलो की दीवारें।

था विश्वास, श्रमिक युग-युग से–
इनसे ही पलते आये हैं,
हटी यवनिका भेद खुला, ये—
धनिक सदा छलते आये हैं!

बिस्कुट-मक्खन-माँस इधर तो
श्वानों को गटकाते देखा,
अलबेली की सजी गोद में
मोटर से गुर्राते देखा!

उधर तड़प भूखे मानव को
छटपट कर मर जाते देखा!
शिशु को माँ की छाती पर ही
जीवन-दीप बुझाते देखा!!

अर्ध नग्न सी वह दिगम्बरा—
जननी—नारी—बहन हमारी,
अन्न-वस्त्र के अम्बारों में
भटक रही व्याकुल दुखियारी;

रोटी के लघु टुकड़े पर ही
उसको लाज लुटाने देखा!
घन से, जीवित उसी माँस को
बन कर गीध चबाते देखा!!



दलित किसानों-मजदूरों पर
अत्याचार न जाते देखे।
कृश शिशु-जीवित कङ्कालों के
हाहाकार न जाते देखे !!

जीभर नाच दिखाया जिनको,
उनको नाच नचाऊँ जी भर।
वन्य-कुटीरों का महलों पर,
नव तम देश बसाऊँ जी भर।
सुन्दर साज सजाऊँ जी भर !!

ताजमहल, मन्दिर-मस्जिद ये
ये गिरजा घर ये मीनारें
खड़ी रक्त मानव का लेकर
ये सब महलों की दीवारें।

था विश्वास, श्रमिक युग-युग से-
इनसे ही पलते आये हैं,
हटी यवनिका भेद खुला, ये—
धनिक सदा छलते आये हैं।

बिस्कुट-मक्खन-माँस इधर तो
श्वानों को गटकाते देखा,
अलबेली की सजी गोद में
मोटर से गुर्राते देखा!

उधर तड़प भूखे मानव को
छटपट कर मर जाते देखा!
शिशु को माँ की छाती पर ही
जीवन-दीप बुझाते देखा!!

अर्ध नग्न सी वह दिगम्बरा—
जननी—नारी—बहन हमारी,
अन्न-वस्त्र के अम्बारों में
भटक रही व्याकुल दुखियारी;

रोटी के लघु टुकड़े पर ही
उसको लाज लुटाते देखा!
धन से, जीवित उसी माँस को
बन कर गीध चबाते देखा!!

भाग्य और भगवान नाम से
पूर्व जन्म के किये कर्म पर,
कितने जाल विछा रक्खे हैं—
पूंजी ने बस एक धर्म पर।

बहुत सहा अब नहीं सहूँगी
फिर से नव निर्माण करूँगी।
दुखी दीन शोषित जन मन में
नव जागृति के गान भरूँगी।

ताण्डव से झँझा से बढ़कर
आज मुझे करना है नर्तन।
हार मान ले विद्युत गति भी
ऐसा होगा नर्तन भीषण।

धन-सत्ता-मद से जो अन्धे
उनका नाम मिटाऊँगी मैं।
भग्न कुटीरों को महलों में—
परिणत कर सुख पाऊँगी मैं।

कवि; तुम मेरे साथ-साथ रह
सब कुछ आँखों-देखा करना।
लौह लेखनी ले निर्भय हो–
इन पापों का लेखा करना।

यह है भीषण सत्य इसी पर
बनकर तुम पागल परवाने।
बढ़े चलो मिट-मिट युग-युग का
शासक-शोषण-शाप मिटाने।

—:※:—



उठ सजनि दीप सँवार ले!

आ रहे प्रिय अनिल कहता, सुरभि ले उल्लसित बहता,
सिहरते हैं आज अवयव, श्वास में है चेतना नव,
शलभ करते हैं प्रतीक्षा—प्राण का उपहार ले।
ले, प्रणय दीपक बार ले।

हास्य शशि में आज अभिनव, रश्मियों में नृत्य नवनव,
ताल नव-लय-मन्द्र लेकर—वह चला पाषाण का उर,
उदधि-अम्बर मिल रहे हैं—युग-युगों का प्यार ले।
सखि, स्निग्ध दीपक बार ले।

हो रहा है मौन उत्सव, है यही प्रिय पद मधुर रव,
उच्छ्वसित हैं सब दिशाएँ, प्रणति में भर मधुर आसव,
द्वार पर प्रिय आ गये हैं, सुमुखि सज शृङ्गार ले!
उठ ज्योति दीपक बार ले!

—:*:—





जीवन दीप जले!

दृग-जल में विरहानल जलता
सुख दुख मिले गले!

शलभ विहँस कर दीपक लौ को—
चूम प्रेम से खो जाता है—
चिर निर्वाण पंथ का प्रेमी
चिर निद्रा में सो जाता है,

फिर कैसे नव जीवन लेता
क्यों फिर-फिर यह जीवन देता!

यह कैसी मोहक क्रीड़ा है
अद्भुत खेल चले!

चिर जीवन चिर यौवन में फिर
चिर निर्वाण—भावना कैसी
जीवन में है मरण, मरण में—
चिर अमरत्व साधना कैसी,

विमल प्रेम में सब कुछ देना,
सब कुछ देकर फिर क्या लेना,

धन्य प्रणय के सच्चे साधक,
तुमसे सृष्टि पले!

जीवन दीप जले!

—०—

देख ले यह सृष्टि



देख ले यह सृष्टि जी भर,
पूछ फिर इस सृष्टि के उस पार क्या है ?

देख ले शुचि उषा सुन्दरि
भव्य नव जीवन जगाती,
देख ले सन्ध्या सुरंगी
भाव नव उर में खिलाती,

कलुष धोती अनवरत
रवि किरण राका रश्मियाँ भी—

देख ; ले नव इन्द्र धनु में
कलामय उच्छ्वास का व्यापार क्या है ?

देख झरनों का विहँसना,
चपल सरिता का उमड़ना,
कूल से अठखेलियाँ कर—
सिन्धु लहरों को पकड़ना,

त्याग का सन्देश देकर,
देख निर्झर बढ़ रहा है,

देख सरिता मिट रही है,
स्वयं मिटने का मधुर उपहार क्या है ?

विहग-कलरव भ्रमर गुञ्जन,
और कोकिल मधुर कूजन,
मुक्त ये स्वाधीनता के
हैं सुनाते सुखद गायन;

पन्थियों को छाँह में रख,
नम्र तरु मधुफल खिलाते,

वृक्ष से लतिका लिपटती—
देखकर तू ही बता यह प्यार क्या है ?

मलयका पाकर परस प्रिय,
मंजु कलिका खिलखिलाती,
मधुप दल को सुरभि का–
सन्देश देकर है बुलाती,

देख रवि, हँसता कमल-दल,
कुमुदिनी शशि देख खिलती,

प्राण जो जड़ में जगाती—
मौन वह मधु बीन की झङ्कार क्या है ?

ताप सहते, शीत सहते,
वृष्टि सहकर भी खड़े हैं,
देख ऊँचे हिम-शिखर ये,
आन पर अपनी अड़े हैं,

देख ले वन-सुखद उपवन,
देख ले प्रासाद सुन्दर,

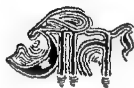
देख वसुधा नव वधू का—
क्षितिज-तट पर हो रहा अभिसार क्या है ?

भूलकर उद्देश्य मत उड़,
कल्पना के पङ्ख पर तू,
श्रम-समय खो, रो पड़ेगा,
यों न पागलपन विचर तू,

देख ले यह विश्व पहले—
जो भरा रंगीनियों से

फिर समझ उस शून्य में सुख—
या व्यथा के भार का चीत्कार क्या है ?

—:o:—





यह तार टूट क्यों जाता है ?

जो जीवन का है सार मधुर
श्वासों का शुचि शृङ्गार मधुर
युग-युग से करती है नर्तन
जिसमें स्वर की झङ्कार मधुर

झङ्कार मौन क्यों हो जाती !
बतला दो मेरी वीणा का;
आधार टूट क्यों जाता है ?
यह तार टूट क्यों जाता है ?

बन बनकर बिगड़ बिगड़ जाता,
क्यों थिर न ठाठ यह रह पाता ?
स्वर नील गगन से टकरा कर–
फिर क्यों भूतल पर छितराता

है क्या रहस्य इसमें बोलो ?
मेरे मृदु स्वर्णिम सपनो का
संसार टूट क्यों जाता है ?
यह तार टूट क्यों जाता है ?

संसृति के सुख-दुख से थककर
एकाकी मैं निर्जन तट पर
वृक्षों की व्यथित छाँह नीचे
सोये कूलो की छाती पर,

कुछ साध लिये जब गाता हूँ
निस्तब्ध निशा में गीतों का–
उपहार टूट क्यों जाता है ?
झंझा-झोकों से गीतों का
उपहार टूट क्यों जाता है ?
यह तार टूट क्यों जाता है ?



कवि, भीम भयङ्कर छेड़ गान,
डोले भू—भूधर विश्व प्राण !

अरुणिम् ऊषा ले ज्वाल जगे
शशि किरणें हों विकराल जगें,
युग-युग की सोई रुधिर तृषित
करवट लेकर करवाल जगे,

शोणित असुरों का चाट-चाट
द्विगुणित चण्डी का बढ़े क्रोध
कर दे अरि-दल विध्वंश म्लान
कवि दिखला अपनी आन-बान,

अपने पन का बस रहे मान,
कवि, ऐसा अभिनव छेड़ गान !

बादल-दल करके शोर जगे,
चपला चञ्चल चहुँ ओर जगे;
चल पड़े प्रभञ्जन प्रलयङ्कर
सागर ले भैरव रोर जगे,

जागे शव सोये भूत-प्रेत
जागे दिक्-दिक् में अट्टहास
कवि, उठा स्वरों का अभियाण
कवि, दिखा स्वरों की नई शान,

कह उठे शत्रु-दल नहीं त्राण,
कवि, नव जागृति का छेड़ गान !

डिम डमरू-ध्वनि उत्ताल जगे,
रण भेरी-स्वर ले काल जगे;
वह चले हलाहल की धारा
सोये विषधारी व्याल जगे

जागे प्रचण्ड हो अनल क्रुद्ध
जागे शङ्कर का भाल नेत्र,
कवि छेड़-छेड़ उन्मत्त तान
स्वर गति में ले तूफान-यान

कवि, आज दिखा अपनी उड़ान;
तू विश्व विजय के सुना गान !

वीरो की सोई आन जगे
रण-कुशल 'कृष्ण' का ज्ञान जगे,
'पारथ' के तीखे तीरों की
तरुणों में शक्ति महान जगे,

जागें महिलाएँ ले त्रिशूल
बढ़ चलें सभी कर विजय घोप
रिपु मुण्डों पर नाचे कृपाण
खप्परवाली का जगे ध्यान

माँ अभया से ले अभयदान;
कवि, वीर भावमय छेड़ गान !

जागे वृद्धों में नव कौशल
वे निकल पड़ें बन महा प्रवल
अरिदल दल-दलकर कर विनाश
विद्युत बन झपटें पल प्रतिपल,

शिशुओं में भी उन्माद जगे
जागे जगती का ओर-छोर
पददलित जगें, जागें किसान
जागे जग-जन का स्वाभिमान,

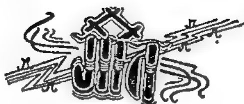
होकर सतर्क हो सावधान,
कवि, स्वाधिकार हित छेड़ तान !

हर हर शङ्कर जय बोल-बोल
सब बढ़ें वीर जी खोल-खोल,
तड़-तड़ तोड़ें माँ के बन्धन
रह जाय काल भी डोल-डोल।

जागे स्वतन्त्रता विमल ज्योति-
हो विश्व विजेता हिन्द देश।
ले प्रजातन्त्र का नव विधान
कवि, बढ़ चल आगे हो प्रधान,

लेकर स्वदेश का शुचि निशान
कवि, भीम भयङ्कर छेड़ गान !

—०—





आज मृदु स्वर बीन की झङ्कार लाया।
प्यार का मधुमय मधुप गुञ्जार लाया॥

बालिका ऊषा हँसी ले मौन प्याली,
अधर से सुर-सुन्दरी ने है लगाली,
सिहर सुमनों ने सुरभि भर प्राण ढाली,
छाई संसृति के दृगों में मदिर लाली,

आज पिक पञ्चम में नव शृङ्गार लाया।
प्यार का मधुमय मधुप गुञ्जार लाया॥

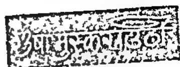
आज विगलित स्नेह से पाषाण चञ्चल,
वह चले ले गान व्याकुल आज कल कल,
आज सरिता वेग से आई उमड़ कर,
सिन्धु में मिल हृदय करने को सु शीतल,

आज गायक श्रेष्ठ नव अभिसार लाया।
प्यार के गीतों में मंजुल प्यार लाया॥

आज अनुपम प्रेम का नव दान करने,
प्रेम के नव देश का निर्माण करने,
शत्रु-मित्रों में मधुर भर प्रेम जीवन,
शान्ति शुचिता ऐक्यता का गान करने,

मृत्यु बन्धन तोड़ अमृत-धार लाया।
प्यार का मधुमय मधुप गुञ्जार लाया॥

विजन में है कुटी—सरिता शान्त तट है,
आज तुमसी प्रेम-प्रतिमा भी निकट है,
'तुम बनी मैं, मैं बना तुम' एक दोनों
आज नभ-सा हृदय विस्तृत मुक्त पट है,



आज कवि नव काव्य नव उद्गार लाया।
प्यार का मधुमय मधुप गुञ्जार लाया॥

आज सब कुछ छोड़ आया हूँ अकेला,
आज सब कुछ वारने की सुखद वेला,
मोल अधरों से अधर का है चुकाना,
देखना है आज सुन्दर प्रणय मेला,

आज प्राणों का मधुर उपहार लाया।
प्यार का मधुमय मधुप गुञ्जार लाया॥



भारती



अरी भारती ! जाग, जाग री जाग ! जाग !!
उर में विकसित कर कमल नये,
मकरन्द नया,
नव मधुप गीत,
भर भाव नवल, अनुराग राग
वाणी की देवी जाग जाग !
अरी भारती ! जाग, जाग ।

यह कलि है,
इस युग की मिश्रित वाणी में
है सृजन-हीन इङ्गित विनाश का केवल,
परमाणु शक्ति की लगी होड़ के भय से—
आतङ्कित जग-जन व्याकुल, चञ्चल-चञ्चल,
वैभव से जो हैं पूर्ण-पूर्ण से लगते ।
पर देख झाँक कर तू उनका अन्तर भी,
वे सब हैं कितने रिक्त बुद्धि, धन, बल से,





आज मृदु स्वर बीन की झङ्कार लाया।
प्यार का मधुमय मधुप गुञ्जार लाया॥

बालिका ऊषा हँसी ले मौन प्याली,
अधर से सुर-सुन्दरी ने है लगाली,
सिहर सुमनों ने सुरभि भर प्राण ढाली,
छाई संसृति के दृगों में मदिर लाली,

आज पिक पञ्चम में नव शृङ्गार लाया।
प्यार का मधुमय मधुप गुञ्जार लाया॥

आज विगलित स्नेह से पाषाण चञ्चल,
वह चले ले गान व्याकुल आज कल कल,
आज सरिता वेग से आई उमड़ कर,
सिन्धु में मिल हृदय करने को सु शीतल,

आज गायक श्रेष्ठ नव अभिसार लाया।
प्यार के गीतों में मंजुल प्यार लाया॥

आज अनुपम प्रेम का नव दान करने,
प्रेम के नव देश का निर्माण करने,
शत्रु-मित्रों में मधुर भर प्रेम जीवन,
शान्ति शुचिता ऐक्यता का गान करने,

मृत्यु बन्धन तोड़ अमृत-धार लाया।
प्यार का मधुमय मधुप गुञ्जार लाया॥

विजन में है कुटी—सरिता शान्त तट है,
आज तुमसी प्रेम-प्रतिमा भी निकट है,
'तुम बनी मैं, मैं बना तुम' एक दोनों
आज नभ-सा हृदय विस्तृत मुक्त पट है,

है वही स्वर्ग, हैं दैव सदैव वहीं रमते !
किन्तु, कैसी है अवमानना आज
उसी पूज्या नारी की,
अधःपतन कैसा है
अधिकार और उत्थान नाम पर उसका।

नारी में भर, फिर से ममता, समता,
करुणा सनेह औ' सहन-शक्ति क्षमता !
बना माँग उसकी उज्ज्वल।
नारी के प्रति—नर के मन में
भर दे श्रद्धा, भर शुद्ध प्रणय।
नारी को दे तू चिर सुहाग।

× × × ×

जन-मन में लहरे शान्ति-प्रीति !
बह निकले झरनों के मानस का [illegible] प्यार
फिर वही प्यार, बन जाय मधुर सा गान !
प्रेम की सब में भर दे वह मधुमय मुस्कान !
त्याग से भरा हुआ [illegible] के [illegible] दान—
मिटा दे अरी भगवती—[illegible] निज अवसाद !
बनें सब निरलस, निर्भय, [illegible] !

भागे कल्मल,
हो शान्त शीघ्र विद्वेष-वह्नि की दुखद ज्वाल !
बन जाँय सभी पावन चन्दन !
बन जाय धरा परिवार एक
सब के सुख भी हों एक और दुःख भी एक !
होकर तन्मय मिलकर छेड़ें—
सब प्रणय-प्रभाती के कोमल स्वर
औ'
मिलकर ही गायें फिर मोहक मधु-विहाग !
है सब में तेरी ज्योति,
सदा आनन्दमयी,
स्वर-शब्दमयी, वरदानमयी
भर प्राणों में सबके
अपने स्मित का जीवन-पराग,
वाणी में सब की भर दे आकर
परम प्रेम का विमल राग,
वाणी की देवी जाग-जाग !
अरी भारती ! जाग-जाग !

—:o:—